Part- A

खण्ड- क

अध्याय-१ : उपन्यास : स्वरूप-विवेचन

अध्याय-२ : प्रारम्भिक काल (सन् १८७७-१९१८)

अध्याय-३ : प्रेमचन्द और उनका युग (सन् १९१८-१९३६)

अध्याय :४ : प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास (सन् १९३६-१९६०)

उपन्यास साम्प्रतिक विश्व-साहित्य की सर्वाधिक लोक-प्रचलित, लोकप्रिय, एवं बहुचर्चित साहित्यिक विधा है। वह कथा-साहित्य का आधुनिक रूप है। कथा कहने और सुनने की प्रवृत्ति मनुष्य की आदिम प्रवृत्तियों में से एक है और प्रत्येक युग के मनुष्य ने अपने युग की कथा कहने-सुनने के लिए नये शिल्प-आयामों का आविष्कार किया है। आधुनिक मनुष्य ने मानवीय सम्वेदना का समाहार उपन्यास में पाया और उसे अपने गले का हार बना लिया। एक राजा के सम्बन्ध में बड़ी प्रसिद्ध कहानी है कि वह ऐसी कहानी सुनना चाहता था जिसका कभी अन्त न हो। आज तक संसार में ऐसी कहानी तो नहीं बनी, क्योंकि चन्द्रकान्ता, चन्द्रकान्ता संतति, अलिफ-लैला, भूतनाथ जैसे बड़े कथानकों का भी आखिर अन्त तो आता ही है। पर हां, कथा-साहित्य सिन्धु-सा विस्तृत किंवा असीम अवश्य हो गया है कि हम अनन्त काल तक उसका छोर नहीं पा सकते। संसार के किसी भी साहित्य-रूप को इतना विस्तार उपलब्ध नहीं हुआ।

शिक्षा-संस्थाओं से सम्बन्धित पुस्तकालयों को छोड़कर अन्य पुस्तकालयों का यदि सर्वेक्षण किया जाय तो पता चलेगा कि आजकल सर्वाधिक परिमाण में उपन्यास ही पढ़े जाते हैं और कहीं कहीं तो उनके अलग वितरण की व्यवस्था करनी पड़ी है। इंग्लेण्ड में अठारहवीं शताब्दी में तो उपन्यासों का पठन-पाठन इतना बढ़ गया था कि वहां के कतिपय लोगों को इस सम्बन्ध में शिकायतें करनी पड़ी हैं।[१] उपन्यास की इस लोकप्रियता का कारण उसकी समाज-धर्मिता के मूल में है। आधुनिक मनुष्य की नब्ज़ जितनी उपन्यास ने पहचानी है, शायद अन्य किसी विधा ने नहीं।

---

१ A Short History of English Literature- I for Evans : Page- 206

उसकी आशा-आकांक्षा, आस्था-अनास्था, सुख-दु:ख, दुख-दर्द, आशा-अरमान, कुंठा, यन्त्रणा, वेदना, पीड़ा सबकुछ तो इसमें रूपायित हो रहा है।

एक यूरोपियन आलोचक ने कहा था कि उपन्यास के पेट में आधुनिक माने जाने वाले सभी साहित्य-रूप आ जाते हैं। तो वह कुछ इस बात की ओर इशारा कर रहा था कि आज की साहित्यिक दुनिया में परिचित जितने भी रूप हैं ---निबन्ध, साहित्यिक पत्र, संस्मरण और इतिहास, धार्मिक प्रवचन, क्रान्तिकारी मेनिफेस्टो, यात्रा-विवरण, रेखाचित्र, डायरी, आत्मकथा आदि --- इन सबको उपन्यास ने अपनाया है। मजेदार बात तो यह है कि सबको आत्मसात करने के बाद भी वह सबसे निराला है।[१]

अंग्रेजी के कवि पोप ने एक स्थान पर लिखा है कि Proper study of man is man और मनुष्य की सही पहचान उपन्यास में ही उभर आयी है, अत: आज के मनुष्य को समझने के लिए आज के उपन्यासों का अध्ययन आवश्यक हो गया है। मनुष्य की एक मूलभूत वृत्ति है --- चेतना का विस्तार ----और और इसके द्वारा वह लोकोत्तर आनन्द तक की उपलब्धि उपलब्धि करता है। हम अपने माहौल से तो परिचित होते हैं परन्तु उपन्यास के द्वारा हम समाज देश और विश्व के माहौल को आत्मसात करते हैं। उपन्यास जीवन की उपासना है। इसमें हम जीवन के साथ तादात्म्य स्थापित करते हैं। एक सफल उपन्यास को जीवन के भाष्य भी कहा जा सकता है। उपन्यास दौड़ते हुए जीवन को पकड़ता है। वह सिनेमाटोग्राफ की

---

१ डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी-उपन्यास : सिद्धांत और विवेचन : सं० डॉ० मक्खनलाल शर्मा : पृ० ४२।

भाँति हमारे सामने आता है। वह गत जीवन को देखने वाली एक आंख बन जाता है।[१] आंग्ल विवेचक राल्फ फाक्स के अनुसार उपन्यास मानव जीवन का गद्य है और उसमें मानव जीवन को समग्रता से समझने और समझा - ने का प्रयास किया गया है।[२] ज्योर्ज महोदय ने भी लिखा है कि उपन्यास क्रमश: मानव जीवन को समझाने की ओर तथा उसके निर्माण की ओर बढ़ रहा है और इसलिए वह मनोरंजक होते हुए भी अत्यन्त उपयोगी है।[३] कई बार हम उपन्यासों के द्वारा किसी भी देश या समाज को इतना अच्छी तरह समझ लेते हैं जितना शायद हम इतिहास या अन्य स्रोतों से भी नहीं समझ पाते। बाल्जाक के उपन्यासों के बारे में कार्ल मार्क्स ने कहा था कि फ्रान्स के इतिहास और आर्थिक-सामाजिक जीवन के बारे में उन्होंने जितना बाल्जाक के उप-न्यासों से सीखा है, उतना वे सारे इतिहासकारों, अर्थशास्त्रियों और समाजनिर्माताओं से भी नहीं सीख सकते थे।[४]

---

१ हिन्दी- उपन्यास : प्रेम और जीवन : डा० शान्ति भारद्वाज : पृ० २० ।

२ The Novel is not a merely fictional prose. It is the prose of man's life, the first art to attempt, to take the whole man and give his expression.
: The Novel and the people, page 20

३ More than interesting, the novel is important because low as its status may be. It does day by day express mankind in making in the mankind.
:- A Novelist on Novels (1918) George : P-4

४ डॉ० शिवदानसिंह चौहान : 'एक पंखुड़ी की तेज धार' की समीक्षा : जनयुग ६ फरवरी १९६६ ।

डॉ० त्रिभुवन सिंह के अनुसार " उपन्यास गद्य साहित्य का वह ~~समर्थ~~ समर्थ रूप है जिसमें प्रबन्ध काव्य का-सा सुसंठित वस्तु विन्यास, महाकाव्य की-सी व्यापकता, गीतों की-सी मार्मिकता, नाटकों-सा प्रभाव गांभीर्य तथा छोटी कहानी की- सी कलात्मकता एक साथ मिल जायगी । श्रृंखलाबद्ध कथानक द्वारा सरल तथा गूढ़ मानव-चरित्रों का निर्माण, उनकी समस्याओं, सक्रिय गतिविधियों तथा सामाजिक एवं मानसिक संघर्षों से युक्त उसके स्वभावों एवं मन की महती ~~शक्ति~~ शक्तियों का पूर्ण जीवित एवं यथार्थ चित्र कल्पना के द्वारा जिस साहित्य -रूप में प्रस्तुत किया जाता है, उसे उपन्यास कहते हैं । "[१]

उपन्यास की लोकप्रियता का एक मुख्य कारण यन्त्र-युग से उत्पन्न आपाधापी और जीवन संघर्ष भी है । ऊब, घुटन, क्लान्ति आदि से पीड़ित लोगों के लिए उपन्यास विरेचन गोलियों का-सा काम करता है । अप-डाउन की जिन्दगी बिताने वालों के लिए ~~उपन्यास अच्छे मित्र सिद्ध होते हैं~~ । तथा बारम्बार लम्बी व्यावसायिक यात्रा करने वालों के लिए उपन्यास अच्छे मित्र सिद्ध होते हैं । कुछ पलायनवादी प्रकृति के लोग भी उपन्यासों में अपनी मुक्ति ढूंढते हैं । आचार्य श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार उपन्यास ने मनोरंजन के लिए लिखी जाने वाली कविताओं की ही नहीं नाटकों की भी कमर तोड़ दी है, क्योंकि पांच मील दौड़कर रंगशाला में जाने की अपेक्षा पांच सौ मील से किताब मंगा लेना आज के जमाने में सहल है, ... किसी लेखक ने ठीक ही कहा है कि इस युग में उपन्यास शिष्टाचार का सम्प्रदाय, बहस का विषय, इतिहास का चित्र और पाकेट का

---

१ डॉ० त्रिभुवन सिंह : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद : पृ०८३ ।

थियेटर हो गया है। इसने कल्पना-प्रसूत साहित्य को अन्य किसी साहित्यांग की अपेक्षा अधिक नजदीक ला दिया है। वह साहित्य में मशीन की विजय ध्वजा है।[१]

<u>उपन्यास : एक नयी विधा :</u> उपन्यास की परिगणना कथा-साहित्य के भीतर होती है और कथा-साहित्य में भारतीय वांगमय समृद्ध ही नहीं वरन् संसार के कई देशों का गुरू भी कहा जा सकता है।[२] महाभारत और रामायण कहानियों की रत्न-मंजूषा है : परन्तु जहां तक उपन्यासों का सवाल है, वह हिन्दी ही नहीं बल्कि सभी भारतीय भाषाओं में पश्चिम की देन है। पश्मि में उपन्यासों का विकास रोमान्स कहानियों से हुआ, परन्तु उसका वास्तविक रूप तो सेम्युअल रिचार्ड्सन (१६८६-१७६१) के चरित्र-प्रधानपामेला से ही मिलने लगता है। वास्तव में देखा जाय तो पश्चिम में भी उपन्यास यन्त्र-युग की देन है और यन्त्र-युग की मूल चेतना वैयक्तिक स्वाधीनता के का आदर्श है। फ्रान्स की राज्य-क्रान्ति ने भी उसकी गतिविधि में योग दिया है। गुलामों के मसीहा अब्राहमलिण्कन ने प्रजातन्त्र के बारे में जो कहा है कि Democracy is the government of the people, for the people, by the people

वही हम इस नये काव्यरूप के लिए भी कह ~~सकता~~ सकते हैं : Novel is the literature of the people, for the people, by the people

तात्पर्य यह कि यह जो नयी वैयक्तिक चेतना जो उपन्यास के मूल में है वह पहले के किसी साहित्यरूप में उपलब्ध नहीं होती। वस्तुत:

---

१ डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी : `उपन्यास` शीर्षक लेख : साहित्य-सन्देश, मार्च १९४० ।

२ डॉ० गुलाबराय : काव्य के रूप : ~~पं~~ पृ० ९०।

उपन्यास नये ज़माने के नये लोगों की नयी अभिव्यक्ति के का नया रूप है।

आधुनिक काल की सबसे बड़ी घटना गद्य का आविर्भाव है। इसका अर्थ यह कतई नहीं कि पहले हिन्दी में गद्य नहीं था, गद्य था परन्तु मनुष्य के सभी भावों की सक्षम, प्राणवान एवं प्राञ्जल अभिव्यक्ति उसमें असम्भव थी। मुद्रण-यन्त्र के आगमन से गद्य के विकास को गति मिली। गद्य आया तो साथ ही गद्य की नयी विधाएँ आयीं। उपन्यास भी उनमें से एक है। अंग्रेजी में तो उसे नावेल कहते ही हैं, गुजराती और और मराठी में उसी से मिलता-जुलता 'नवलकथा' शब्द गढ़ लिया गया है। नावेल या 'नवलकथा' में नवीनता का स्पष्ट बोध है। यह काव्यरूप पुराने काव्यरूपों से कई दृष्टियों से भिन्न है।

(१) अतिमानवीय एवं चमत्कारपूर्ण घटनाएं या कार्य- व्यापार जो प्राचीन काव्यरूपों में स्थान पाते रहे और हमारी कौतूहल वृत्ति को जगाते भी रहे हैं उनका उपन्यासों में कोई स्थान नहीं है क्योंकि जैसा कि पहले ~~दृष्टि~~ दृष्टिगत किया ~~जा चुका~~- जा चुका है, कि उपन्यास यथार्थ के सन्निकट है। यदि उसमें पुराना कथानक आता भी है तो नयी जीवन व्याख्या के साथ आता है, उदाहरणार्थ नरेन्द्र कोहली के 'दीक्षा' उपन्यास में पौराणिक वृत्त को समकालीन जीवन-सन्दर्भों से ~~जोड़~~- जोड़ने की चेष्टा की गयी है।[१]

(२) उपन्यास का अर्थ ही निकट रखी हुई वस्तु होता है, अर्थात् वह वस्तु या कृति जिसे पढ़कर ऐसा लगे कि यह हमारी ही है, इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिम्ब है।[२] उसमें दुनिया जैसी है वैसी चित्रित करने का प्रयास र रहता है।[३] उपन्यास और काव्य में यह मौलिक अन्तर है कि उपन्यास मौजूदा हालत को भुलाकर भविष्य की कल्पना नहीं कर सकता : पर काव्य वर्तमान परिस्थिति की सम्पूर्ण उपेक्षा करके अपने आदर्श गढ़ सकता है।[४] महा काव्य

---

१ डॉ० रामदरश मिश्र : 'पिछले वर्ष के कुछ उपन्यास' शीर्षक लेख : धर्मयुग, फरवरी १९७६। २ हिन्दी साहित्य कोश : भाग-१ : पृ० १५३।

३ डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी : 'उपन्यास' शीर्षक लेख : साहित्य-सन्देश : मार्च, १९४०। ४ वही : । पृ०

वह देता है जो हम बनना चाहते हैं, उपन्यास की तरह वह नहीं देता जो हम हैं।[१]

(३) नाटक, महाकाव्य आदि में चित्रित प्राचीन कथा-साहित्य के नायक धीरोदात्त एवं उच्चकुलोद्भव होते थे जबकि उपन्यास में होरी (गोदान) सूरदास (रंगभूमि), हसनअली (पत्थर-अल-पत्थर), और चनुली (एक टुकड़ा इतिहास) जैसे पात्र भी नायक-नायिका हो सकते हैं क्योंकि उसकी मूल चेतना ही वैयक्तिक स्वाधीनता एवं समानता के सिद्धान्तों से पोषित है।

(४) प्राचीन कथा-साहित्य के अन्तर्गत कथानक-रूढ़ियों का प्रयोग प्राय: होता था, जबकि उपन्यास की कथा जीवन का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करती है। अत: कथा का फार्मूलाबद्ध होना उसमें दोष माना जायेगा।

इस विवेचन के द्वारा हम इस निष्कर्ष पर आसानी से पहुंच सकते हैं कि उपन्यास मूलत: पश्चिम की विधा है। वह यन्त्र-युग की देन है। गद्य-युग की उपज है। और उसे प्राचीन कथा- साहित्य से जोड़ना ----दशकुमार-चरित और कादम्बरी आदि से----नितान्त हास्यास्पद है।

परिभाषा : उपन्यास की परिभाषा पर विचार करते समय यह पंक्ति स्मृति में बरबस उभर आती है ---' बात तुम्हारी जिन्दगी भर की मगर, बात इतनी बात आधी रह गई।' उसके उद्भव से लेकर अब तक के कई उपन्यासकार और साहित्य-विवेचकों ने उसे परिभाषित करने की चेष्टा की है और करते रहेंगे परन्तु 'बात' शायद आधी ही रह जायेगी। बिहारी की नायिका की भांति इसकी तस्वीर खींचना भी दुष्कर कार्य है। वाल्टर एलन

---

१ डॉ० रामरतन भटनागर : 'उपन्यास और महाकाव्य' शीर्षक लेख : साहित्य-सन्देश, मार्च १९६० ।

ने तो अपने हथियार ही डाल दिये हैं।[1] क्योंकि उपन्यास मूलत: आधुनिक युग कीउपज उपज है और यह वह युग है जिसका दृष्टिकोण सर्वथा व्यक्ति व्यक्तिवादी चेतना पर निर्भर है। स्वयं फिल्डींग महादय जो उनके जनकों में से एक हैं उसके स्वरूप के बारे में कहते हैं कि मैं इस क्षेत्र में स्थापक होने के नाते उसे कोई भी रूप प्रदान कर सकता हूं।[2] साहित्य के जितने भी रूप विधान हैं, उनमें उपन्यास सर्वाधिक बहुग्राही एवं सर्वाधिक लचीली विधा है।[3] वह परिस्थिति के अनुसार कोई भी रूप धारण कर लेती है। कमाल की बात तो यह है कि उपन्यास अभी तक की सारी विधाओं को अपने में आत्मसात् करते हुए भी सबसे भिन्न है। उसकी बन्धनहीनता और जटिलता की कोई सीमा नहीं।[4] इसमें मदोन्मत्त साहसिकों की कथा रह सकती है, समाज की कथा रह सकती है।

---

१ I shall not attempt to define the novel, for where everyone else has failed it is improbable that I would succeed: Walter Allen, 'Reading a Novel ' (1956) P-13.

२ As I am in reality the founder of a new province in writing, I am at lib/ erty to make what levels place there in" - Fielding (190Ø-50) : Henry Filding : Tom Jones :Book II P-41.

३ The Novel is of all pictures the most Comprehensive and the most elastic" : Henry James, ' Selected Literary criticism, :P%182.

४ The Novel, which is the most complex and formless of all its (i-e. literature's) divisions."
: The structure of the novel : Edwin Muir (1963) P:89

इसमें एक दिन की, एक घण्टे की या एक युग की कथा रह सकती है।[१] अत: अन्त में यही कहकर सन्तोष कर लेना पड़ता है कि Novel is a form of literature that can be more easily ~~idenfi~~ identified than defined.

अंग्रेजी शब्द ~~`नवेल`~~ `नावेल` (Novel) लैटिन के विशेषण Novella , इतालियन और स्पेनिश शब्द Novella एवं फ्रान्सीसी शब्द Novelle से ग्रहण किया गया है।[२]

सर मोनियर तथा डा० मैकडोनल के संस्कृत-अंग्रेजी शब्दकोशों में उपन्यास शब्द के जो अर्थ दिये गये हैं, वे साहित्य की किसी विधा विशेष से सम्बद्ध नहीं है।[३] अत: इसकी चर्चा यहां अनावश्यक है। अंग्रेजी के ~~`न~~नावेल` शब्द के वजन पर `नवल` शब्द के तेलगू, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं में प्रयोग मूलत: नवीनता के बोधक है।

डा० माताप्रसाद गुप्त के अनुसार हिन्दी में `उपन्यास` शब्द का सर्व प्रथम प्रयोग सन् १८७१ में एक कथा-पुस्तक के नामकरण में, `मनोहर उपन्यास` के रूप में हुआ। हिन्दी में यह `उपन्यास` शब्द बंगला के माध्यम से आया है।

---

१ हिन्दी साहित्यकोश : भाग-१ : पृ० १५४R

२ The Encyclopedia Amaricana Vol. 20 P.467

३ (क) उपन्यास : उल्लेख (Metion), अभिकथन (statement), सम्मति (suggestion), उद्धरण (quotation), सन्दर्भ (reference) ।
[हिन्दी साहित्यकोश : भाग-१ : पृ० १५४ ।
(ख) उपन्यास : विज्ञप्ति (intimation), अभिकथन (statement), उद्घोषणा (declaration) वादविवाद (discussion) ।
: हिन्दी उपन्यास : सं० डा० सुषमा प्रियदर्शिनी : पृ० ६ ।

बंगला साहित्य में इसका प्रयोग सन् १८५६-५७ ई० से ही होने लगा था। संक्षेप में कह सकते हैं कि बंगला और हिन्दी में `उपन्यास शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के `नावेल` के अर्थ में मिलता है।

हमारे यहाँ प्रतिमुख नाट्य-सन्धि के एक भेद के रूप में `उपन्यास` शब्द के प्रयोग नाट्य-शास्त्र में जिस रूप में हुआ है उसमें किसी बात को युक्तियुक्त-पूर्वक रखने तथा आनन्द प्रदान करने के तात्पर्य को व्यक्त किया गया है। सम्भवत: इसी आशय को लक्ष्य करके इस शब्द का प्रचलन इस नयी विधा के लिए हुआ हो

पूर्ववर्ती विवेचन में कहा जा चुका है कि उपन्यास का स्वरूप बड़ा ही लचीला है, और यह स्वाभाविक भी है क्योंकि उपन्यास का सम्बन्ध अधिकांशत: साम्प्रत जीवन से है और अतीत के किसी भी युग की अपेक्षा वह इतना क्षिप्र गति से बदल और बढ़ रहा है कि उसे पकड़ पाना मुश्किल हो रहा है। जीवन का एक अर्थ पानी भी है और पानी का अपना कोई आकार नहीं होता। प्रत्येक बड़ा कलाकार उसे एक नया रूप प्रदान करता है।[१] कला की प्रकृति ही प्रगत्यात्मक

---

१ तुलनीय : (क) " I think that every great artist necessarily creates his ownform also." : Leo Tolstoy : Novelist on the novels : P-265.

(ख) Every carefully written novel presents its own separate problem in method and technique- in the devices of narrative, in style, in arrangement, in some trick of contrast or comparision, in the use of surprise, in the manipulationof different part of the story which deal simultaneous events in the use of marvellous in porsonification."

: The making of Literature : R.A. James scott : P. 390.

(२) " मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूं। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"[१]

(३) " उपन्यास कार्य-कारण शृंखला में बंधा हुआ वह गद्य कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित वास्तविक या काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव-जीवन के सत्य का रसात्मक रूपसे उद्घाटन किया जाता है।"[२-+-]

(४) " यह शब्द उप (समीप) तथा न्यास (थाती) के योग से बना है, जिसका अर्थ हुआ (मनुष्य के) निकट रखी हुई वस्तु, अर्थात् वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि वह हमारी ही है, इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिम्ब है।"[३]

(५) " उपन्यास आधुनिक युग का महाकाव्य है। इसमें मानव-जीवन और मानव-चरित्र का चित्रण उपस्थित किया जाता है। वह मनुष्य के जीवन और चरित्र की व्याख्या करता है।"[४]

---

१ प्रेमचन्द : कुछ विचार : पृ० ४६ ।

२ डॉ० गुलाबराय : काव्य के रूप : पृ० १५५ ।

+ तुलनीय : New English Dictionary " A fictious Prose tale or narrative of considerable length, in which characters and actions professing to represent those of real life are portrayed in a plot."

३ हिन्दी साहित्यकोश : भाग-१ : पृ० १५३ ।

४ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य : पृ० १७३ ।

है। जैसे विविध कोणों से लिया जानेवाला वस्तु-चित्र विभिन्न रूपों में उपलब्ध होता है : उसी प्रकार जीवन को देखने के नजरिये के अनुरूप उपन्यास का रूप भी परिवर्तित होता रहेगा। जो किशोरीलाल गोस्वामी का नजरिया था, वह प्रेमचन्द का नहीं है और जो प्रेमचन्द का था वह जैनेन्द्र का नहीं है। तात्पर्य यह कि कलाकार के दृष्टिकोण, प्रकृति, जीवन-दर्शन प्रभृति के अनुसार उपन्यास का रूप भी बदलता रहा है। 'किसीने कहा है कि उपन्यास की सबसे अच्छी परिभाषा उपन्यास का इतिहास है।' इस उक्ति में गहरा सत्य है।'[१]

अस्तु, प्रस्तुत विधा को समझने के लिए कुछ परिभाषाओं पर विचार के लेना प्रासंगिक ही होगा :

(१) 'उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।[२]...... इस व्याख्या में 'कथा' शब्द ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। उपन्यास के मूल में कथा है। वह काल्पनिक कथा है।.....काल्पनिक कथा का अर्थ उस कथा से है जो कल्पना की सहायता से अधिक ~~मार्मिक~~ मार्मिक, सुरक्षित और ग्राह्य बना दी गई हो, जिसमें सुंदर चयन-शक्ति की सहायता से जीवन के किसी उद्दिष्ट अंश की यथारुचि रूपरेखा अंकित की गई हो : जिसमें अनावश्यक अंश एक भी न हो और जो अपनी पूर्णता में आकाश के चन्द्रमा की भांति चमक उठे। ऐसी काल्पनिक कथा में असत्य का अंश चन्द्रमा की कालिमा की भांति प्रकाश में लुप्त हो जाता है।[3]'

---

१ अज्ञेय : हिन्दी- साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य : पृ० ८१।

२ तुलनीय : A Novel is the form of written prose narrative of considerable length invelving the readers in an imagined real world which is new because it has been created by the author.
: Katherine Lever, The Novel and the Reader, P: 16.

३ डॉ० श्यामसुन्दरदास : साहित्यालोचन : पृ० १३५।

(६) " उपन्यास में दुनिया जैसी है वैसी चित्रित करनेका प्रयास रहता है।"[१]

(७) " उपन्यास मनुष्य के सामाजिक, वैयक्तिक अथवा दोनों प्रकार के जीवन का रोचक साहित्यिक रूप है, जो प्रायः एक कथा-सूत्र के आधार पर निर्मित होता है।"[२]

(८) " शृंखलाबद्ध कथानक द्वारा सरल तथा गूढ़ मानव-चरित्रों का निर्माण, उनकी समस्याओं, सक्रिय गतिविधियों तथा सामाजिक एवं मानसिक संघर्षों से युक्त उसके स्वभावों एवं मन की महती शक्तियों का पूर्ण जीवित एवं यथार्थ चित्र कल्पना के द्वारा जिस साहित्य रूप में प्रस्तुत किया जाता है, उसे उपन्यास कहते हैं।"[३]

(९) यह सत्य है कि मुझे कविता-नाटक की अपेक्षा उपन्यास में यथार्थ को आंकना सरल प्रतीत होता है।[४]

(१०) उपन्यास यथार्थ मानव-अनुभवों एवं सत्य का आकलन है, वह जीवन की एकता में अनेकता तथा अपूर्णता में समग्रता स्थापित करनेका प्रयत्न करता है।[५]

---

१ डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी : `उपन्यास` शीर्षक लेख : साहित्य-सन्देश, मार्च, १९४० ।

२ डॉ० गणेशन : हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन : पृ० २६ ।

३ डॉ० त्रिभुवनसिंह : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद : पृ० ८३ ।

४ जयशंकर प्रसाद का अभिमत : विचार और अनुभूति : डा० नगेन्द्र पृ० ३१ ।

५ डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : हिन्दी उपन्यास- उपलब्धियाँ : पृ० ११ ।

(११) उपन्यास के-बद केवल कथात्मक गद्य नहीं। वह मानव-जीवन का गद्य है। वह प्रथम कला-रूप है जिसमें मनुष्य को समग्रतया अंकित करते हुए उसकी भावनाओं को अभिव्यक्त किया गया।[१]

(१२) उपन्यास वह कथाश्रित प्रकथनात्मक गद्य है जिसमें लेखक किसी पात्र का चित्रांकन करते हुए एक-युग-थ- युग-विशेष के जीवन को, उसके स्त्री-पुरुषों की भावनाओं, राग-विरागों[२] तथा प्रतिक्रियाओं को, उनके अपने परिवेश में विश्लेषित करता है।

(१३) उपन्यास में मानव-अनुभवों का चित्रण एक विशिष्टता के साथ स्वतन्त्र अथवा आदर्शात्मक दृष्टिकोण[३] से किया जाता है। अतः अनिवार्यतः वह जीवन पर की गई टिप्पणी है।

(१४) उपन्यास अपनी व्यापकतम परिभाषा में जीवन के वैयक्तिक एवं प्रत्यक्ष प्रभाव का चित्रण है।[४]

---

१ "The novel is not a merely fictional prose. It is a prose of man's life, the first art to attempt, to take the whole man and give his expression." :Ralph Fox: 'The Novel and the People' : P-20.

२ "Thus the novel can be described as a narrative in prose, based on a story, in which the author may portray character, and the life of an age, and analyse sentiments and passions, and the reactions of men and women to their environment."
: I for Evans: ' A Short History of English Literature'.
P; 206.

3 "The novel is typically a representation of human experience whether liberal or idial and therefore inevitably a comment upon life." : Dr. Herbert J. Mullor:

4 " A novel is, in its broadest definition a personal, a direct impression of life." : Henry James:

४-

डॉ० श्यामसुंदर दास उपन्यास को वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा मानते हैं। उनकी परिभाषामें कथा तत्व पर विशेष बल दिया गया है। उपन्यास कथा -साहित्य होने के नाते कथा से कभी नहीं पृथक् किया जा सकता सकता। कथा का सम्पूर्ण लोप सम्भव भी नहीं है। हाँ, अब कथा वह अलगनी नहीं रही जिस पर घर-भर के कपड़े लगाये जाते थे। अब लेखक विचारों के कपड़े टाँगने के लिए अन्य साधनों का उपयोग भी करने लगा है: परन्तु उससे कथा का महत्व कम नहीं हुआ। ई. एम. फारस्टर के अनुसार वह उपन्यास क का एक मूलभूत अंग है। वह उपन्यास की रीढ़ है जिसके आधार पर ही उसका शरीर खड़ा होता है।[१] डॉ० शिशिर चट्टोपाध्याय के मतानुसार कथा वह हाड़पिंजर है, जिसके सहारे सब जैव जीवन्त ज्ञानतन्तु बंधे रहते हैं जो व्यक्ति को पूर्णता प्रदान कर उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करते हैं।[२] उपन्यास में कथा प्राण तत्व भले ही न हो, परन्तु वह चीज़ ज़रूर है जिसके कारण हम प्राणों को महसूस करते हैं।

दूसरे श्यामसुंदरदासजी द्वारा निर्दिष्ट काल्पनिक कथा का तात्पर्य यह है कि उपन्यासकार भले ही अपनी कथा के ताने-बानों को सामाजिक यथार्थ के धागों से बुनता रहे, उसमें कल्पना का अंश तो रहेगा ही क्योंकि उपन्यास कला है। वैसे आजकल उपन्यास में विश्वसनीयता लाने के लिए कुछ

---

१ " The novel tells a story. That is the fundamental aspect without which it could not exit. xxx that is why the backbone of a novel has to be a story"-
: Aspects of the Novel P: 34-35

२ " The novel is something greater than story, but still, it is the story which like the skeleton holls the living tisses of the novel together and imparts to it the resemblance of a complete living thing."
: The Technique of the Modern English Novel- P:18.

उपन्यासकार एक तरकीब आजमाते हैं। वे भूमिका में ऐसा निर्देश देते हैं कि उपन्यास की कथा सत्य घटना पर आधारित है। त्यागपत्र (जैनेन्द्रकुमार), बाण-भट्ट की आत्मकथा (हजारीप्रसाद द्विवेदी), अनदेखे अनजान पुल (राजेन्द्र यादव) तथा जीगर अने अमी (गुजराती उपन्यास- चुनीलाल वर्धमान शाह) आदि इसके उदाहरण हैं। हां, पात्रों का आलेखन करते समय कुछ जीवन्त व्यक्ति लेखक के दिमाग में हो सकते हैं। रूसी औपन्यासिक तुर्गनेव ने एक स्थान पर लिखा है कि जब तक मैं कुछ जीवन्त चरित्रों को देख नहीं लेता अपने उपन्यासों में पात्रों का निर्माण नहीं कर सकता। प्रेमचन्दजी भी इसी बात पर जोर देते हैं कि लेखक को हमेशा अपने साथ पेन्सिल और नोट रखना चाहिए ताकि वह समाज में घूमते-फिरते जीवन्त पात्रों का सम्पूर्ण ब्योरा दे सकें। क्रिस्टोफर इशरवुड अपने को खुल्ला ढक्कनवाला कैमेरा कहता है। वह लिखता है कि मैं अपने सामने आने वाले किसी भी व्यक्ति को मन में उतार लेता हूं, सामने खिड़की खुली रखकर 'शेव' बनाते हुए पुरूष को तथा कपड़े धोती हुई स्त्री को भी, क्योंकि कभी इनको विकसित करके पेश करनेकी आवश्यकता पड़ जाय। तात्पर्य यह कि उपन्यास की कथा वास्तवदर्शी होते हुए भी काल्पनिक होती है।

प्रेमचन्दजी उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र कहते हैं। इसमें चित्र शब्द ध्यान देने योग्य है। उपन्यास चित्र है, प्रतिबिम्ब नहीं। मनुष्य का पूरा प्रतिबिम्ब लिया भी नहीं जा सकता, क्योंकि उसके लिए जीवन का जितना ही विस्तृत फलक चाहिए। उपन्यासलेखक संसार से मानव-चरित्रों को लेकर उनसे मानस-चित्रों का निर्माण कर उन्हें अपनी कल्पना के रंगों से सजाता है। प्रेमचन्दजी की परिभाषा का पूर्वार्द्ध यथार्थ चिन्तन कीओर संकेत करता है : तो उसका उत्तरार्द्ध (उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।) मनोविश्लेषण की ओर संकेत करता है। अतः मनोविश्लेषण-वादी औपन्यासिक भी एक तरह से प्रेमचन्दजी की ही मनोधारणा को

आगे बढ़ा रहे हैं

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने उपन्यास को आधुनिक युग का महाकाव्य कहा है। यहां केवल इतना कह देना पर्याप्त होगा कि उपन्यास में पहलीबार सामान्य मध्यवित्त परिवार और उसका परिवेश उभर आया है। सैंकड़ों वर्षों से दीन-हीन उपेक्षित सामान्य सामान्य लोगों की भावनाओं को उपन्यास ने सर्वप्रथम वाणी प्रदान की है। शायद इन्हीं अर्थों में आचार्य -जी ने उसे आधुनिक युग का महाकाव्य कहा है, जैसे कोई सामान्य चावलों के लिए कह दे कि हमारे लिए तो यही 'देहरादूनी' है।

पूर्वनिर्दिष्ट सभी परिभाषाओं में कुछ वाक्यों, वाक्यांशों या शब्दों पर ध्यान केन्द्रित करने से यह स्पष्ट होता है कि सभी विवेचकों ने किसी न किसी रूप में एक बात को ट्रेस आउट किया ही है, वह है उपन्यास की यथार्थधर्मिता। यह उपन्यास का वही व्यावर्तक गुण है जिसके कारण वह अन्य काव्य-रूपों से भिन्न सिद्ध होता है। उपन्यास लेखक का नज़रिया या दृष्टिकोण चाहे कोई भी हो--- आदर्शवादी, आलोचनात्मक, ऐतिहासिक मनोवैज्ञानिक, मनोविश्लेषणवादी --- परन्तु उसका निरूपण मनोभूमि पर ही संभव है। उपन्यासकार अपने साम्प्रतिक यथार्थ की कभी उपेक्षा नहीं कर सकता। यह यथार्थ भौतिक एवं मानसिक दोनों प्रकार का हो सकता है। प्रेमचन्द तथा प्रेमचन्द स्कूल के अन्य उपन्यासकारों में जहां भौतिक यथार्थ (बाह्य यथार्थ या सामाजिक यथार्थ) का प्राधान्य है, वहां मनोविश्लेषण-वादी उपन्यासकारों में मानसिक या चेतनागत यथार्थ (आंतरिक यथार्थ) उपलब्ध होता है। इसका अर्थ यह कतई नहीं कि प्रेमचन्द में मानसिक यथार्थ का अभाव है। यहां केवल परिमाण का अन्तर है। प्रेमचन्दजी में जहां कला की भव्यता है वहां इनमें कला की सूक्ष्मता है। हमें चाहिए कि इन दोनों अतिवादी छोरों का अतिक्रमण करके इनमें ~~सामस्~~--- सामञ्जस्य स्थापित करें। हिन्दी को कोई बड़ी औपन्यासिक ~~उपलब्धि~~- उपलब्धि तभी मिल

सकती है। एक बात निर्विवाद है कि उपन्यास का वर्ण्य विषय व्यक्ति (Person), लोग (People) या दोनों को पारस्परिक पृष्ठभूमि में रखकर चित्रित करना है। सामान्य लोगों की भावनाओं का सम्यक् आकलन पद्य की अपेक्षा गद्य में ही अधिक सम्भव होता है, अतः उसका माध्यम गद्य ही है। अपेक्षाकृत विस्तृत जीवन-फलक को समाहित करने के कारण उसका कलेवर भी बड़ा होता है। आधुनिक जीवन-प्रवाह का चित्रण उपन्यास की मुख्य मांग है और वह निरन्तर परिवर्तित रहता है, अतः उपन्यास का बाह्य स्वरूप भी बदलता रहता है।[१]

एक बात उपन्यास के सम्बन्ध में असंदिग्ध रूप से कही जा सकती है कि उसके जैसे तार्किक निर्बन्ध एवं स्वच्छन्दी काव्य-रूप में भी उसके रचयिता की स्वतन्त्र दृष्टि या जीवन-दर्शन सर्वत्र उसमें आद्यन्त मिलता रहता है।[२] जैसे भिन्न भिन्न मोतियों को एक धागे में पिरोकर माला बनायी जाती है, उसी भाँति लेखक अपने चारों तरफ के यथार्थ एवं मन की सारी वैचारिक सत्ता को एक विचार-सूत्र में बाँधकर उसे एक कलाकृति का रूप देता है। यह बात ही उसे सामान्य गासबे-छेटी साहित्य से अलग कर साहित्य की विशुद्ध कोटि में स्थापित करती है।

---

१ "The novel belongs to a restless age where things are always happening to people and people therefore are always altering." - Caudwell, 'Illusion and Reality,' P: 207. (1956)

२ " If there is one gift more essential to a novelist than another it is the power of combination- the single vision" - Virginia Woolf, 'The Novels of E. M. Forster,' 'The Death of the Moth,' -P: 8 (1947)

उपन्यास के साथ एक विचित्रता यह है कि जहाँ एक अच्छा साहित्यिक (Master-Piece) उपन्यास देना अत्यन्त दुष्कर कर्म है, वहाँ एक सामान्य-साधारण घास-लेटी उपन्यास लिखना बाएँ हाथ का खेल है।[१] अच्छे साहित्यि स्तर के उपन्यास में लेखक का अपना एक ज़बरदस्त मत होता है और उस पर वह पहाड़ की तरह अटल होता है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि उपन्यास आधुनिक काल की वह गद्य विधा है जिस में लेखक सामाजिक या वैयक्तिक यथार्थ का निरूपण अपनी स्वतन्त्र जीवन-दृष्टि को केन्द्र में रखते हुए करता है।

तत्व-विवेचन : कला का मूल्यांकन उसकी समग्रता में किया जाता है। उसके विभिन्न अंग परस्पराश्रित होते हैं। कहा जाता है कि मनुष्य का निर्माण आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इन पंचमहाभूतों से हुआ है। परन्तु यह उनके एक-मेक में रस-बस जाने से हुआ है। इनमें से प्रत्येक की पृथक् सत्ता से उसके उसका स्वरूप ही बदल जायेगा। उसी प्रकार उपन्यास के तत्व भी इतने घुले-मिले होते हैं कि उन्हें पृथक् करके देखना कठिन है। कथा पात्रों का निर्माण करती है किन्तु पात्र भी कथा को बनाते-बढ़ाते हैं। इस प्रकार वे परस्पर गुँथे हुए हैं। तथापि अध्ययन की सुविधा के लिए यहाँ उन पर थोड़ा विचार कर लेना आवश्यक है।

---

१ "Though the novel is a great art, it is also an art which admits of much mediocretalent." - I for Evans, 'A short History of English Literature.' P: 207 (1970)

अधिकांश ~~विद्व-~~ विद्वानों ने उपन्यास के छः तत्व माने हैं --- (१) कथावस्तु या कथानक, (२) पात्र, (३) कथोपकथन, (४) देशकाल, (५) विचार और उद्देश्य और (६) शैली । डॉ० गुलाबराय ने एक अन्य तत्व --- रस या भाव --- को भी उसमें जोड़ा है।[१] डॉ० भारतभूषण अग्रवाल ने विचार और उद्देश्य के लिए जीवन-दृष्टि शब्द दिया है।[२] ई० एम० फारस्टर निम्न-लिखित छः तत्वों की चर्चा उपन्यास के सन्दर्भ में करते हैं : (१) धी स्टोरी, (२) धी पीपल, (३) धी प्लाट, (४) फन्टसी, (५) प्रोफेसी और (६) पैटर्न एण्ड रिधम ।[३] उन्होंने कथोपकथन जैसा कोई अलग तत्व नहीं माना । फन्टसी को छोड़कर अन्य पांच तत्व हमारे पांच तत्वों से मिलते-जुलते हैं ।

हिन्दी के आलोचना सम्बन्धी ग्रन्थों में कुछ बातें संदिग्ध हैं, जैसे कथावस्तु और कथानक को कतिपय विद्वान एक ही मानते हैं ।[४] हिन्दी साहित्य कोश में एक स्थान पर कथा और कथानक को अलग-अलग बताया गया है,[५] तो दूसरे स्थान पर इससे विरोधी बात कही गयी है ।[६] सामान्यतया हमारे यहां कथावस्तु कथा या कहानी (कन्टेण्ट) के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है । कई बार हम सामान्य भाषा में कहते हैं कि इसका वस्तु रामायण, महाभारत या फलां ग्रन्थ से लिया गया है, तो वहाँ उसका अर्थ कन्टेण्ट या कच्ची सामग्री (रा मटीरियल्स) ही लिया जाता है । ई० एम० फारस्टर स्टोरी एवं प्लोट का अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखते हैं : Let define a plot. We have defined a story as a narrative of events arranged in their time-sequence. A plot is also a narrative ofevents, the emphasis falling on causality. 'The king died and then the queen died,' is a story. 'The king died, and the queen

---

१ काव्य के रूप : डॉ० गुलाबराय : पृ० १५६ । २. डॉ० भारतभूषण अग्रवाल : ~~पृ० ३४ ।~~ : हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव : पृ० ३४ ।
३. आस्पैक्ट्स आफ धी नाविल : ई० एम० फारस्टर : पृ० ~~८~~-७ ।
४. काव्य के रूप : पृ० ~~१६२-१६३~~ १५६ । ५. हिन्दी साहित्यकोश : भाग-१ : पृ० २०३ । ६. वही : पृ० १५७ ।

died of grief' is a plot. The time-sequence is preserved, but the sence of ~~causality~~ causality overshadows it.

(E.M.Forster, Aspects of the Novel) P: 93-94.

इस प्रकार कथावस्तु में काल-क्रमानुसार घटनाएं तो रहती हैं , परन्तु उसमें कार्य-कारण श्रृंखला की नियोजना नहीं हाती है। कथा में ` फिर क्या हुआ ?` वाली जिज्ञासा है तो कथानक (प्लोट) में ` क्यों` वाली सतर्क बुद्धि एवं स्मृति (इनटैलीजन्स एण्ड मेमोरी) । तात्पर्य यह कि यह दोनों तत्व स्वभावत: भिन्न हैं। हम ` स्टोरी ` को कथावस्तु एवं ` प्लोट ` को कथानक कह सकते हैं।

` शैली ` के सम्बन्ध में भी परस्पर विरोधी बातें उपलब्ध होती हैं। डॉ० गुलाबराय[१], डॉ० भगीरथ मिश्र[२] प्रभृति विद्वानों ने उपन्यास की शिल्प-विधियाँ (टैकनिक्स) या कथानक-विन्यास की विभिन्न पद्धतियों को कथानक तत्व के अन्तर्गत रखा है तो कहीं-कहीं कुछ विद्वानों ने उन शिल्प-विधियों को ही शैली मान लिया है : यथा --- डायरी शैली, पत्र-शैली, आत्मकथात्मक शैली आदि। हिन्दी साहित्यकोश में दोनों प्रकार का प्रतिपादन मिलता है।[४] यहां ~~विचारणी-~~ विचारणीय प्रश्न यह है कि हम उपन्यास के शैली तत्व में लेखक की भाषा-शैली , लक्षणा-व्यंजना आदि शक्तियों का प्रयोग, भाषाडम्बर, सादगी, कहावतें मुहावरे आदि का प्रयोग, प्रतीकों का प्रयोग आदि बातों को लेते हैं या लेखक की कथा कहने की टैक्नीक या पद्धति। यदि हम टैक्नीक को उपन्यास की शैली मानें तो ` ए स्टाइल इज़ ए मन ` वाली बहुप्रचलित एवं बहुचर्चित बात असत्य असत्य सिद्ध हो जायेगी, क्योंकि एक ही उपन्यासकार भिन्न-भिन्न उपन्यासों में विविध टैक्नीक का प्रयोग कर सकता है : जैसे जैनेन्द्रकुमार के `परख ` उप-

---

१ काव्य के रूप : पृ० १६१-१६२ । २. काव्यशास्त्र : पृ० ६१ । ३. डॉ० घनश्याम ` मधुप ` : हिन्दी उपन्यास : सं० सुषमाप्रियदर्शिनी : पृ० २६-३० । ४ हिन्दी साहित्यकोश : भाग-१ : पृ० १५६, १६१ ।

-न्यास में आत्मसम्भाषणात्मक, सुनिता और `विवर्त` में ऐतिहासिक या वर्णनात्मक, `कल्याणी` एवं `त्यागपत्र` में आत्मकथनात्मक आदि पद्धतियों का प्रयोग हुआ है। तो क्या जैनेन्द्र का व्यक्तित्व उपन्यास दर उपन्यास बदलता रहा है ? इस प्रश्न से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि शैली तत्व में उपन्यास के कथा विन्यास की पद्धतियों की चर्चा नहीं होती। शैली में लेखन के ढंग को ही माना जायेगा।

अतः हम उपन्यास के निम्नलिखित सात तत्व मान सकते हैं : (१) कथा-वस्तु, (२) कथानक (प्लाट), (३) पात्र, (४) कथोपकथन, (५) देशकाल, (६) विचार और उद्देश्य या जीवन-दृष्टि, (७) शैली।

कथावस्तु (स्टोरी) : उपन्यास की गणना कथा-साहित्य (फिक्शन) में होती है : अतः कथावस्तु उसका एक अपरिहार्य अंग है। ई०एम० फारस्टर के अनुसार वह उपन्यास की रीढ़ है।[१] हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों में इसी एक तत्व की बोलबाला थी। ई०एम० फारस्टर के मतानुसार कालक्रमानुसार रखी हुई घटनाओं को ही कथा कहते हैं।[२] उपन्यास की सफलता कुछ आधार कथावस्तु के चयन में भी है। वैसे महान् प्रतिभा के धनी कलाकारों के पारस-स्पर्श से सामान्य कथावस्तु भी चमक उठती है।

विषय-वस्तु की मौलिकता बहुत कम उपन्यासों में पायी जाती है, पर यदि वह नितान्त मौलिक है तो उसे उपन्यास का एक अतिरिक्त गुण ही माना जायेगा। कहा जाता है : "नथिंग इज़ न्यू अण्डर धी स्काय"। दृष्टिभ्रम या परिमित ज्ञान के कारण हम कुछ बातों को मौलिक मान बैठने की गलती करते हैं। वस्तुतः मौलिकता विषय-वस्तु में न होकर उसके प्रस्तुतीकरण में है। पूर्व-

---

१ ई०एम० फारस्टर : आस्पेक्ट्स आफ धी नाविल : पृ० ३५।

२ वही : पृ० ३५।

वर्ती विवेचन में यह निर्दिष्ट किया जा चुका है कि उपन्यासकार किस प्रकार जीवन और जगत से वस्तु का चयन करता है। अतः परिवर्तनशील परिस्थितियाँ तथा वैज्ञानिक निष्पत्तियाँ नये विषय निर्दिष्ट करती जाती हैं।[१]

आजकल उपन्यासों में कथावस्तु की क्षीणता दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। `मुक्तिबोध` (जैनेन्द्रकुमार), `सोया हुआ जल` (सर्वेश्वरदयाल सक्सेना) तथा `सूरज का सातवाँ घोड़ा` (डॉ० धर्मवीरभारती) `वे दिन` तथा `लाल टीन की छत` (निर्मल वर्मा) आदि ऐसे ही उपन्यास हैं। उपन्यास में कथावस्तु का होना बुरा नहीं है किन्तु हमें इसका विस्मरण कभी नहीं करना चाहिए कि उपन्यास कहानी से कहीं ऊपर की चीज़ है।[२] इस सन्दर्भ में गुजराती के लब्ध-प्रतिष्ठित विवेचक एवं कथा-लेखक डॉ० सुरेश जोशी के निम्नलिखित विचार दृष्टव्य हैं: `कथा कहना बहुत ही सरल है,पर सच्चा ~~कलाकार~~ उपन्यासकार कथा को अपने सर्जन में केवल निमित्त रूप में लेता है। कथा तो उपन्यास के शिल्प में एक आधार मात्र है। दैनिक-पत्रों में प्रति- सप्ताह प्रकाशित होने वाले या रेलवे-स्टालों पर बिकने वाले उपन्यास अत्यधिक परिमाण में लोक-समुदाय द्वारा पढ़े जाते हैं, तथापि वे साहित्य तत्व से रहित होते हैं। इस प्रकार

---

१ यशपाल कृत `झूठा सच` तथा डॉ० राहीमासूम रज़ा कृत `आधा गाँव` विभाजन की, जैनेन्द्र कृत `मुक्तिबोध` कामराज योजना की, रेणु कृत `जुलूस` तथा जगदीशचन्द्र कृत `मुट्ठि भर कांकर` शरणार्थी समस्या की तथा काशीनाथसिंह कृत `अपना अपना मोर्चा` छात्र- समस्या की विषय-वस्तु पर आधारित उपन्यास हैं। इलाचन्द्र जोशी कृत `प्रेत और छाया` हीनता-ग्रंथि पर आधारित उपन्यास है तो नरोत्तम नागर कृत `दिन के तारे` में `मातृ-बद्धत्व` (मधर-फिक्शेशन) को निरूपित किया गया है।

२ "The Novel is something greater than story,"
Dr. Shishir Chattopadhyeya, 'The Technique of the modern English Novel' P: 18.

इस प्रकार के उपन्यासों में केवल कथा ही होती है।..... इन उपन्यासकारों से यदि उनकी यह आधार लकड़ी कथा छीन ली जाय तो बेचारे एक कदम भी आगे न बढ़ सकें।. ... वस्तुतः कथा का निर्माण तो पात्रों द्वारा होना चाहिए। ..... हमारे उपन्यासों में तो सर्जन-प्रक्रिया ही छेद उड़ गया है। इसलिए ही हम कथा की भिक्षा के लिए पुनः पुनः इतिहास की दुधारी गाय के पास जाने से थकते नहीं हैं।'[१]

यों देखा जाय तो समूचा संसार पड़ा है। उपन्यासकार कहीं से भी कथावस्तु ले सकता है और उपन्यासकार को चाहिए कि वह संसार की इस खुली किताब से पन्ने के पन्ने उड़ा लें। इससे ज्यादा सामग्री उसे कहीं से नहीं मिल सकती। इस सम्बन्ध में प्रेमचन्दजी की यह बात बड़ी विचारणीय है कि' उपन्यासकार को अपनी सामग्री सामग्री आले पर रखी हुई पुस्तकों से नहीं, उन मनुष्यों के जीवन से लेनी चाहिए जो उसे नित्य ही चारों तरफ मिलते हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि अधिकांश लोग अपनी आखों से काम नहीं लेते।.... पुस्तकों में नये चरित्र न मिलें, पर जीवन में नवीनता का अभाव कभी नहीं रहा'[२]।

कथानक (प्लोट) : पूर्ववर्ती विवेचन में कथावस्तु और कथानक के अन्तर को स्पष्ट किया गया है। किसी बिल्डींग या इमारत के निर्माण में पत्थर,२- ईंट, गारा, चुना, सीमेन्ट आदि कई पदार्थों की आवश्यकता रहती है, पर इन घटकों एवं उपकरणों में से एक सुन्दर भवन खड़ा करना शिल्प है। उसी भांति उपन्यासकार जीवन तथा पुस्तकों से मिलने वाले सारे स्रोतों को एकत्रित कर उसके समुचित गुम्फन करता है। उपलब्ध सारी सामग्री के समीचीन नियोजन से वह अनुभूत यथार्थ को सम्प्रेषित कर देता है।

---

१ कुंजबिहारी महेता : साहित्यस्वरूपो : पृ० २२-२३।

२ प्रेमचन्द : 'कुछ विचार' : पृ० ८५-८६।

3 To evoke in oneself a sensation which one has experienced beforeand having evoked it in oneself communicate this sensation in such a way that others may exprience the same sensations and pars through them, in this does the activlty of art consist. - Leo Tolstoy.

उपन्यासकार जब उपन्यास-लेखन में प्रवृत्त होता है तो प्राय: उसके सम्मुख निम्नलिखित सामग्री होती है : (१) कथासूत्र[१], (२) मुख्य या आधिकारिक कथा, (३) प्रासंगिक कथाएं, (४) समान्तर कथाएं, (५) पत्र, समाचार या प्रामाणिक लेख, (६) किसी की डायरी के कुछ पन्ने, (७) जन-श्रुतियाँ, (८) लोक-साहित्य आदि आदि। इन सारे घटकों का विनियोग किस प्रकार किया जाय, कथ्य को कैसे सर्वाधिक सार्थक, व्यंजित एवं सम्प्रेषित किया जाय, कथा का निर्वाह कैसे हो, वह किस रूप में प्रस्तुत की जाय, देशकालतथा कथोपकथन आदि का उपयोग कहाँ और कितने परिमाण में हो, कथा कितनी प्रकथनात्मक रूप में, कितनी पात्रों के सम्वाद व कार्य द्वारा और कितनी पूर्वदीप्ति (फ्लैश-बेक) द्वारा कही जाय, यह सारी समस्याएं कथा के शिल्प या कथानक से सम्बन्धित हैं। उपन्यास की मौलिकता भी इसी पर अवलम्बित है। कथावस्तु के नितान्त अमौलिक रहते हुए भी शिल्प की नवीनता से कृति साहित्यिक गरिमा को उपलब्ध कर लेती है।

एक ही घटना या कार्य- व्यापार का चित्रण कई ढंग से किया जा सकता है। जैनेन्द्रकुमार के एक निबन्ध का शीर्षक है --- 'प्रेमचन्द का गोदान यदि मैं लिखता।'[२] इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि एक ही विषय-वस्तु को प्रस्तुत करने के भिन्न भिन्न ढंग हो सकते हैं। प्रेमियों के प्रथम मिलन को कई प्रकार से बताया गया है। 'कोई तो नायक-नायिका का प्रथम मिलन बालक-

---

१ "उपन्यास जिस मुख्य विचार, दृष्टिकोण, आधारभूत कार्य या विषय-विशेष पर अवलम्बित होता है, उसीको उसका कथासूत्र या थीम कहते हैं।"
--- हिन्दी साहित्यकोश : भाग-१ : पृ० ३५७।
(ख) मुंशी प्रेमचन्द के 'निर्मला' का थीम दहेज-प्रथा और अनमेल व्याह पर प्रहार करना है : तो 'गोदान' में भारतीय किसान की ऋण-समस्या और उससे उद्भूत करुणता को थीम रूप में लेकर उसे गहराया गया है।

२ जैनेन्द्रकुमार : साहित्य का श्रेय और प्रेय : पृ० २१२।

बालिकाओं की क्रीडा में, जैसे गुड़ियों का घर बनाते हुए या रेत का भाड़ बनाते हुए दिखाते हैं (जैसे शरदबाबू के देवदास में), कोई तीर्थ-यात्रा में (यथा बाबू जयशंकर प्रसाद के कंकाल में) या दुर्घटना में (जैसे रवीन्द्रनाथ ठाकुर की नौका डूबी में), तो कोई स्कूल या कालेज, सभा-सोसायटी, व्याख्यान या सेवा- समिति में मिलाते हैं।[१] प्रेमचन्दजी ने 'सुजान भगत' कहानी में जो थीम दी है, ठीक वैसी ही थीम हमें मृदुला गर्ग की सद्य: प्रकाशित 'अलग अलग कमरे' में एक दूसरे परिवेश में प्राप्त होती है।[२] तात्पर्य यह कि उपन्यास की मौलिकता उसकी बुनावट या शिल्प में है।

उपन्यास के शिल्प में मौलिकता के अतिरिक्त रोचकता, सम्भाव्यता, सुसंगठितता आदि का ध्यान भी रखना पड़ता है। यहां यह ध्यातव्य है कि रोचकता और मनोरंजन भिन्न हैं। उपन्यास वास्तविक जीवन की कहानी है, अत: उसमें सम्भाव्यता का गुण होना चाहिए। जिन्दगी में बहुत सी असम्भव एवं अकल्पित घटनाएं घटती रहती हैं : परन्तु उपन्यास में घटनाओं की सम्भावितता का का परीक्षण कर लेना वांछनीय है। हम पूर्व विवेचन में कह चुके हैं कि इसी कारण कारण उपन्यास पुराने काव्यरूपों से भिन्न है। कुशल लेखक असम्भव घटनाओं का आ आलेखन भी ऐसे करता है कि वे हमें सम्भव से ही लगें। अरस्तू का यह कथन कि 'कलाकार' प्राबेबल इमपासिबिलिटी' का निरूपण करता है' इमप्राबेबल पासिबिलिटी' का नहीं।'[३] उपर्युक्त मन्तव्य से खूब मिलता-जुलता है।

उपन्यास का कलेवर जहां पात्रों और कथाओं के दृष्टिकोण से विस्तृत होता है, वहां उसका सुगठित होना आवश्यक है। वैसे आजकल के उपन्यासों में घटनाओं की क्रमबद्धता पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता। कहा जा सकता है

---

१ डॉ० गुलाबराय : काव्य के रूप : पृ० १५७।

२ धर्मयुग : २८ दिसम्बर, १९७५।

३ डॉ० सुरेश जोशी : कथोपकथन : पृ० १०।

कि जीवन असम्बद्ध और अविचारित घटनाओं का समूह होता जा रहा है। फिर उसकी अनुकृति उपन्यास में क्रमबद्ध घटनाओं का विकास कैसे सम्भव हो सकता है? सुनियोजित कथानक में घटनाओं का क्रमबद्ध विकास होता है जब कि नीत्शे के अनुसार जो बातें पहले निश्चित कर ली जाती हैं असत्य सिद्ध होती हैं।[१] कुछ भी हो एक बात असंदिग्ध रूप से कह सकते हैं कि घटनाओं को हम किसी भी क्रम में लें, किन्तु कार्य-कारण की सम्बद्धता आवश्यक है। क्रमबद्ध घटनाओं के न होने के बावजूद भी रेणु के ` मैला आँचल ` के प्रत्येक पृष्ठ या परिच्छेद से उसका ` मोक एपिक टोन ` व्यक्त हुए बिना नहीं रहा है।[२] ऐसे कथानक का निर्माण सुनियोजित कथानक से भी कठिन कार्य है। उसमें एक सुव्यवस्थित अव्यवस्था रहती है। तथापि उपन्यास की चुस्ती और संगठितता के लिए अनावश्यक बातों का परिहार शिल्प की दृष्टि से वांछनीय है। लेखक को इस सूत्र का ध्यान रखना चाहिए कि Brevity is the soul of Art, और यह संक्षिप्तता क्या है? Brevitly that excludes everything that is redundant and leaves nothing that is important.

<u>शिल्प-विधि : (टेकनिक आफ नाविल)</u> जिस प्रकार बड़े बड़े प्रासादों एवं इमारतों की डीज़ाइनें अलग-अलग होती हैं, उसी प्रकार उपन्यास का प्लोट (शिल्प) भी भिन्न भिन्न ढंग से बनाया जाता है। इसे शिल्प-विधि या टेकनिक कहते हैं। इससे उपन्यास को को एक विशिष्ट आकार (फार्म) मिलता है। यह उपन्यास के वस्तु, विचार एवं परिवेश के अनुरूप परिवर्तित होता है और उसकी सफलता इस पर निर्भर करती है कि वह केन्द्रवर्ती विचार को रूपायित करने में कहां तक सफल-हुआ-है- हुआ है। कला की कोई भी वस्तु जब तक उसके उचित रूप में नहीं आती तब तक वह सम्प्रेषित नहीं मानी जायेगी।[३]

---

१ डॉ० घनश्याम मधुप : ` हिन्दी उपन्यास ` सं० डॉ० सुषमा प्रियदर्शिनी : पृ० १६

२ उमाशंकर जोशी : क्षितिज (नवलकथा विशेषांक) सं० डॉ० सुरेश जोशी : पृ०५८२

३ द्रष्टव्य : (क) "Form is the objectifying idea and its excellences it would seem, depends upon its appropriteness to the idea." William VanO' Conner : Forms of fiction: P: 1.

इस क्षेत्र में अभी तक में अनेक प्रयोग हुए हैं और हो रहे हैं। नीचे कुछ प्रमुख विधियों का परिचय दिया जा रहा है :

(१) वर्णनात्मक या ऐतिहासिक पद्धति : उपन्यास के आरम्भकाल से लेखकों की यह प्रिय शैली रही है। अधिकांश उपन्यास इस में लिखे गये हैं। इसमें उपन्यासकार एक द्रष्टा के रूप में कथा कहता है। उपन्यास में पात्रों के चरित्र-चित्रण, वातावरण, देश-काल के निर्माण आदि में इस विधि से अत्यधिक सहायता मिलती है। इसका अर्थ यह कतई नहीं कि यह विधि सरल है और उसमें उपन्यास सरलता से लिखा जा सकता है। हिन्दी में श्रद्धाराम फुल्लौरी कृत 'भाग्यवती' (१८७७), मुंशी प्रेमचन्द का 'गोदान' (१९३६), वृन्दावनलाल वर्मा कृत 'झांसी की रानी' (१९४७), भगवतीचरण वर्मा कृत 'भूले बिसरे चित्र' १९५८), यशपाल कृत 'झूठा सच' (१९५८-६०), अमृतलाल नागर कृत 'बूंद और समुद्र' (१९६५), नरेश मेहता कृत 'यह पथ बंधु था' (१९६२) राजेन्द्र यादव कृत 'मन्त्र बिद्ध' (१९६७) तथा उषा प्रियंवदा कृत 'रुकोगी नहीं राधिका ?' (१९६७) इत्यादि इस पद्धति के प्रमुख उपन्यास हैं। परन्तु प्रारम्भिक उपन्यासों की तुलना में बाद की कृतियों में सूक्ष्मता, आन्तरिक भावों का विश्लेषण, मानसिक ~~द्वन्द्व~~ द्वन्द्व एवं चरित्र की समग्रता पर अधिक ध्यान दिया गया है।

(d) "Unless the form be adequate no story, no song, or tune, or picture, or statue, or dance, or play, or ornament, or building can convey its creator's feelings to its audience or spectators, whether a thing is work of art or not deponds upon its form" : Leo Tolstoy: What is art : P: 10.

(२) आत्मकथनात्मक : उपन्यासकार जब उत्तम पुरुष "मैं या `हम` के रूप में कथा-वर्णन करता है, तब उसे आत्म-कथात्मक या आत्मकथनात्मक उपन्यास कहते हैं। उपन्यास में अधिक विश्वसनीयता लाने के लिए इस विधि का उपयोग किया जाता है। हिन्दी में इस शैली में लिखा गया प्रथम उपन्यास बाबू ब्रजनन्दन सहाय का `सौन्दर्योपासक` (१९१२) है। रामचन्द्र वर्मा का `कलंक`, चन्द्रशेखर का `वारांगना रहस्य` इलाचन्द्र जोशी के `लज्जा` एवं `घृणामयी`, जैनेन्द्रकुमार का `त्यागपत्र`, सुरेश सिंहा का `सुबह अन्धेरे पथ पर` तथा मोहन राकेश का `नआनेवाला कल` इस प्रकार के उपन्यासों उपन्यास हैं। इनमें भी कुछ उपन्यास ऐसे हैं जहां कथा कहने वाला पात्र गौण होता है, जैसे `त्यागपत्र` में जस्टीस पी० दयाल : परन्तु कुछ उपन्यासों में उस पात्र का चरित्र भी समग्रतया उभर आता है, जैसे `सुबह अन्धेरे पथ पर` का राजू और `न आनेवाला कल` का नरूला। आत्मकथात्मक की एक कोटि में वे कृतियाँ भी आती हैं जहां विभिन्न पात्र अपनी अपनी कथा कहते हैं। इसे पात्रात्मक-विधि भी कह सकते हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर कृत `घरे-बाहिरे`, वि० स० खांडेकर (प्रसिद्ध मराठी उपन्यासकार) कृत `अश्रू`, ऋषभचरण जैन का `हिज हाइनेस` तथा नागार्जुन कृत `इमरतिया` इसके उदाहरण हैं। कुछ विद्वानों ने आत्मकथात्मक की एक और सरणि भी मानी है --- संस्मरणात्मक।[१] अज्ञेय कृत `शेखर एक जीवनी` तथा जैनेन्द्रकुमार का `सुखदा` इसके उदाहरण हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित `बाण भट्ट की आत्मकथा` निर्मल वर्मा का `वे दिन` तथा उदय शंकर भट्ट कृत `वह जो मैंने देखा` भी इस पद्धति के अन्य उदाहरण हैं।

(३) पत्रात्मक : जब समूचा उपन्यास पात्रों के परस्पर के पत्रों से संघटित होता है, तब उसे पत्रात्मक उपन्यास कहते हैं। पाश्चात्य साहित्य में `पामेला` (१७४०) इस शैली में लिखा गया प्रथम उपन्यास है। हिन्दी में बेचन शर्मा `उग्र` कृत `चन्द हसीनों के खतूत` (१९२३) पत्रात्मक

---

१ डॉ० सत्यपाल चुघ : `प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्प विधि` : पृ० ७१।

शैली का प्रथम उपन्यास है। पंजाबी उपन्यास लेखक नानकसिंह का `पुनर्मिलन` भी इसी शैली का उपन्यास है। `सारोज़ आफ वर्थर` (गेटे का लघु-उपन्यास), `अजय की डायरी` (डॉ० देवराज), नदी के द्वीप` (अज्ञेय), छोटी-सी बात (रांगेय राघव), `अन्धेरे बन्द कमरे` (मोहन राकेश) आदि उपन्यासों में इसका आंशिक प्रयोग हुआ है।

(४) डायरी-पद्धति : इसमें प्राय: उपन्यास का मुख्य पात्र जीवन को दैनिक रूप से डायरी में लिपिबद्ध करता है। यही डायरी के पन्ने उपन्यास का स्वरूप धारण कर लेते हैं। गेटे के `सारोज़ आफ वर्थर में इसका भी प्रयोग हुआ है। इस पद्धति का अंशत: उपयोग तो कइयों ने किया है, परन्तु अधिकांशत: इस पद्धति का निर्वाह निम्नलिखित पांच उपन्यासों में हुआ है ---- `जयवर्द्धन` (जैनेन्द्रकुमार) `अजय की डायरी` (डॉ० देवराज), `शह और मात` (राजेन्द्र यादव), `एक और अजनबी` (सुरेश सिनहा) तथा `एक पति के नोट्स` (महेन्द्र भल्ला)। इनमें कहीं-कहीं अन्य पद्धतियों का भी थोड़ा बहुत उपयोग किया गया है। `एक पति के नोट्स` कथ्य, शिल्प और स्वरूप में एक नया प्रयोग है। इस पद्धति के ~~उपन्यास~~ उपन्यासों में सतर्कता की बड़ी आवश्यकता है। पात्रों की डायरियां नित्य-प्रति के जीवन में लिखी जाने वाली डायरियों के समान ही सहज एवं स्वाभाविक होनी चाहिए। कहीं भी ऐसा भास नहीं होना चाहिए कि डायरी के बहाने लेखक ने अपने चिंतन एवं विचारों को आरोपित करना चाहा है। साथ ही यह भी प्रतीत नहीं होना चाहिए कि पात्र निष्क्रिय रहकर जीवन में लम्बी-चौड़ी डायरियां ही लिखने का काम करते हैं। गुजराती के नयी पीढ़ी के कवि-उपन्यासकार स्व० रावजी पटेल का `झंझा` उपन्यास इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।

(५) चेतन-प्रवाह शैली : इसे अंग्रेजी में स्ट्रीम आफ कानसीयसनेस

कहते हैं। इस शैली में शुद्ध रूपसे हिन्दी में कोई उपन्यास ज्वायस के `युलिसीस` या `ए पार्ट्रेट आफ धी आर्टिस्ट एज़ ए यंग मैन` या वर्जीनिया वुल्फ के उपन्यासों की भाँति नहीं लिखा गया है। इसके आंशिक प्रयोग `शेखर एक जीवनी` चलते-चलते (भगवतीप्रसाद वाजपेयी), तथा एक और अजनबी` (सुरेश सिनहा ) आदि उपन्यासों में प्राप्त होते हैं। कुछ विद्वान प्रभाकर म्म माचवे कृत` परन्तु` को भी इस शैली का उपन्यास मानते हैं।[१] इस पद्धति में मन में चकराने वाली अनेक स्पष्ट-अस्पष्ट धुंधली बातों का आलेखन स्मृति, पूर्वदीप्ति, उद्धरण, स्वप्न, दिवास्वप्न आदि के सहारे किया जाता है। एफ० जे० होफमैन ने इन उपन्यासों का उद्देश्य चेतना के चार विभिन्न स्तरों का आलेखन बताया है: चेतन, पूर्व चेतन, उपचेतन और अवचेतन।[२]

कथानक-निरूपण की इन प्रमुख शैलियों के अतिरिक्त निम्नलिखित कुछ और भी शैलियां प्रचलित हुई हैं:-(६) कथात्मक या पंचतन्त्रात्मक शैली : `सूरज का सातवां घोड़ा` (डॉ० धर्मवीर भारती), बहती गंगा` ( शिवप्रसाद मिश्र `रुद्र` ), `रानी नागफनी की कहानी` ( हरिशंकर परसाई ) तथा `मुख सरोवर के राजहंस` ( शैलेश मटयानी ) आदि इस शैली के उपन्यास हैं। `सूरज का सातवां घोड़ा` को कथा-गर्भित-उपकथा शैली के अन्तर्गत भी माना गया है है।[३]

---

१ डॉ० सत्यपाल चुघ : प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्प विधि : पृ० ७२।
(ख) डॉ० धनराज-म्म मानधाने : हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास : पृ० २०८

२ "The purpose of the stream of consciouness novelist is the representation of four different levels of consciousness : The conscious, the preconscious, the subconscious and the unconscious."

:Bergson and the stream of cousciousness novel:
Introtuction : Shiv K. Kumar: P: 2.

३ दृष्टव्य : साहित्यकोश : भाग-१ : पृ० ९६३।

(७) फोटोग्राफिक शैली : `मैला आँचल`, परती परिकथा (रेणु) । (८) रेखाचित्रात्मक : `बिल्लेसुर बकरिहा` (निराला), दिगम्बर (शान्तिप्रिय द्विवेदी) । (९) प्रतीकात्मक : `सोया हुआ जल` (सर्वेश्वरदयाल सक्सेना), `समुद्र में खोया हुआ आदमी` (कमलेश्वर) तथा `सूखता हुआ तालाब` (डा० रामदरश मिश्र) आदि । (१०) जीवनी-मूलक : `फांसी की रानी` (वृन्दावनलाल वर्मा) तथा `लोई का ताना` (रांगेय राघव) । (११) यात्रात्मक : `मधुर स्वप्न` (राहुल सांकृत्यायन) । (१२) संगीतीकृत : चांदनी के खण्डहर (गिरिधर गोपाल) । (१३) लोककथात्मक : `काठ का उल्लू और कबूतर` (केशवचन्द्र वर्मा) तथा `बाबा बटेसरनाथ` (नागार्जुन) । (१४)इण्टरव्यूपरक : `ये कोठेवालियाँ` (अमृतलाल नागर)। (१५) उपन्यास-दर-उपन्यास पद्धति : `अमृत और विष` (अमृतलाल नागर) । (१६) टेलिफोनात्मक : `मिस्टर तिवारी का टेलिफोन` (सरयू पण्डा गौड़) । (१७) सहलेखन पद्धति : `बारह खम्भा`, `ग्यारह सपनों का देश` तथा `एक इन्च मुस्कान` । अन्तिम उपन्यास एक लेखक दम्पति (राजेन्द्र यादव तथा मन्नू भण्डारी) ने लिखा है तो शेष दो कई लेखकों ने मिलकर । गुजराती में `हवे लता शुं कहशे?` नामक उपन्यास कई लेखकों ने मिलकर लिखा था ।

उपर्युक्त शैली वैविध्य से स्पष्ट है कि कथानक या शिल्प नये नये आयामों और प्रयोगों की दिशा में निरन्तर गतिशील है । इस सन्दर्भ में डॉ० विनयमोहन शर्मा का यह मत विचारणीय है कि " हम नए उपन्यास के नए शिल्प का स्वागत तभी कर सकते हैं जब वह पत्तों का खेल ही न रहकर जीवन की-अन्तम-आत्मा का उद्घाटक भी बने --- वह बाजार का ऐसा खोटा सिक्का न बने जो अपनी बाहरी चमकदमक से खरे सिक्के का चलन ही न रोक दे ।"[१] तात्पर्य यह कि प्रयोग के लिए प्रयोग ठीक नहीं है । वस्तुत: वह प्रयोग रचना की मूलभूत

---

१ हिन्दी उपन्यास : सिद्धान्त और विवेचन ` : सं० मक्खनलाल शर्मा : पृ० ७ ।

आवश्यकता के रूप में प्रकट होना चाहिए । हम यह अनुभव करें कि लेखक जो कहना च चाहता था वह केवल इसी एक रूप में सम्भव था । तभी नया शिल्प या प्रयोग सार्थक हो सकता है ।

पात्र : कथानक या शिल्प के पश्चात् उपन्यास का तृतीय महत्वपूर्ण अंग चरित्र या पात्र है । कथा की कल्पना में ही पात्रों की विद्यम विद्यमानता है । पात्रों के क्रिया-कलापों से ही कथावस्तु का निर्माण होता है । वस्तु कार्य है तो पात्र कारण, पात्र कार्य है तो वस्तु कारण । इस प्रकार वस्तु एवं पात्र यह दोनों परस्परावलम्बित तत्व उपन्यास में समान प्राधान्य रखते हैं । वस्तु के बिना पात्र नहीं और पात्र के बिना वस्तु नहीं ।[१] उपन्यासकार को जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करना है : अत: वह ऐसे पात्रों का निर्माण करता है जो हमारे आसपास की दुनिया के हैं । शायद इसीलिए ई० एम० फारस्टर ने पात्र के लिए 'पिपल' शब्द का प्रयोग किया है । टाल्सटाय ने डिकन्स के पात्रों के सम्बन्ध में लिखा है कि 'वे मेरे निजी मित्र हैं' । तात्पर्य यह कि उपन्यास के पात्रों में स्वाभाविकता का गुण होना चाहिए । महान से महान व्यक्ति में भी कुछ मानवीय कमजोरियां रहती हैं, और निकृष्ट से निकृष्ट व्यक्ति में भी कुछ अच्छाइयां होती हैं । उपन्यासकार को चाहिए कि वह इस मानवीय सत्य एवं वैचित्र्य का सफल उद्घाटक बने ।

पात्र अपने देशकाल एवं परिवेश की उपज होते हैं । भाषा, बोली, प्रदेश, जाति, शिक्षा, प्रकृति आदि की सारी विशेषताओं ---- उसकी अच्छाइयां और बुराइयाँ --- को लेकर वे अवतरित होते हैं । अत: उपन्यासकार को चाहिए कि उसे उपन्यास में चित्रित समाज एवं मनुष्य का सर्वाधिक ज्ञान हो । लेखक वह वैद या डाक्टर है जो समाज एवं मनुष्य की नब्ज को भलीभांति पहचाने है । अत: उसे चाहिए कि वह ज्यादा से ज्यादा मनुष्य समुदाय में डूबता-उतराता

---

१ रमणलाल वसन्तलाल देसाई : 'जीवन अने साहित्य' : पृ० ५४-५५ ।

रहे, उसमें रस-बस जाय।[१] प्रसिद्ध अंग्रेजी अभिनेता वाटर-ट्रुथ पाल के विषय में प्रसिद्ध है कि उसकी उसकी विश्व-विख्यात फिल्म 'लारेन्स आफ अरेबिया' बनाने से पहले वह तीन चार साल तक अरबस्तान में रहा था। 'मादाम बोवरी' के रचयिता फ्लाबर्ट को एक बार अपने मित्र की पत्नी की अन्तिम क्रिया में जाना था। जाते समय वे अपने एक मित्र से कहते हैं: 'शायद इस प्रसंग में से मुझे अपनी 'बोवरी' के लिए कुछ मिले। प्रसंग का ऐसा उपयोग कदाचित् किसी को बुरा लगे। पर उस में बुरा भी क्या है? एक मनुष्य के अश्रुओं से शैली एवं सर्जन की प्रक्रिया के द्वारा मैं दूसरे कइयों को रुलाऊंगा।' इन दोनों उदाहरणों से स्पष्ट है कि लेखक को आवश्यकतानुसार विषय-वस्तु का प्रत्यक्ष ज्ञान सम्पादन करना पड़ता है। वह कोरी कल्पना से काम नहीं चलाता।

स्वाभाविकता के बाद चरित्र-सृष्टि का दूसरा गुण है मौलिकता। मौलिकता का अर्थ यह कतई नहीं है कि उपन्यासकार ऐसे पात्रों को जन्म दें जिनका अस्तित्व न इस दुनिया में है और न होगा। मौलिकता का अर्थ मनुष्य के विभिन्नत्व में एकत्व और एकत्व में विभिन्नत्व स्थापित करना है। मुंशी प्रेमचन्दजी के शब्दों में, 'किन्हीं भी दो आदमियों की सूरतें नहीं मिलतीं, उसी भांति आदमी के चरित्र भी नहीं मिलते। जैसे सब आदमियों के हाथ-पांव, आंखें, नाक, कान,

---

१ द्रष्टव्य: "Special information concerning the manners and the speech of the particular classes and callings is needed for a prerequisite of their correct portraiture. But a broad and intimate knowledge of human nature at large, a keen insight into the workings of its common motives and passions, creative power of and dramatic sympathy, will together often suffice to give substantial reality and the unmistakable touch of truth to character." An Introduction to the study of Literature W. H Hudson P: 150-151.

मुंह होते हैं पर इतनी समानता पर भी जिस तरह उनमें विभिन्नता मौजूद रहती है, उसी भांति सभी चरित्रों में भी बहुत-कुछ समानता होते हुए भी कुछ विभिन्नताएं होती हैं। यही चरित्र सम्बन्धी समानता और विभिन्नता --- अभिन्नत्व में भिन्नत्व और विभिन्नत्व में अभिन्नत्व --- दिखाना उपन्यासकार का मुख्य कर्तव्य है।'[१]

चरित्रसृष्टि का तीसरा बड़ा गुण पात्रों की सप्राणता एवं जीवन्तता है है। एम० एल० राबिन्सन ने लिखा है कि ' चरित्र-चित्रण से यह तात्पर्य है कि उपन्यास के पात्रों का अंकन कुछ इस प्रकार की स्वाभाविकता से किया जाय कि वे निर्जीव पुस्तक के पृष्ठों से परे मूर्त होकर जीवन्त वैय क्तिकता ग्रहण कर लें।'[२] उपन्यास के पात्र लेखक के हाथ की कठपुतली नहीं है। एक बार लेखक अपने पात्रों की की चारित्रिक विशेषता को उद्घाटित कर दें, उसके पश्चात् उनके कार्य-कलाप उसीसे संचालित होने चाहिए। फिर स्वयं लेखक का भी उन पर बस नहीं रहता। प्रसिद्ध औपन्यासिक थैकरे एक स्थान पर लिखता है :' मैं अपने पात्रों को वश में नहीं रख पाता। बल्कि मैं उनके हाथों में होता हूँ और वे मुझे जहां चाहे ले जाते जाते हैं।'[3] तात्पर्य यह कि श्रेष्ठ उपन्यास की रचना के लिए उसके पात्रों का सजीव होना अत्यन्त आवश्यक है। वस्तुत: समाज के घात-प्रतिघात एवं परिस्थितियों के बीच ही उनका सहज विकास हो सकता है।

पात्रों के चरित्र-चित्रण में स्वाभाविकता, मौलिकता एवं सप्राणता के साथ साथ मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द्वात्मकता भी आवश्यक है क्योंकि मनुष्य निरन्तर अपनेसे-बाहर से जूझता रहता है। एक ही परिस्थिति में भिन्न भिन्न पात्र पृथक्-पृथक् व्यवहार करते हैं। कई बार एक ही पात्र समान स्थिति में विरोधी

---

१ प्रेमचन्द : कुछ विचार : पृ० ७२-७३। २ रायटिंग फॉर यंग पिपल : पृ० ११।

३ "I do not control my characters. I am in their hands and they takeme where they please" Hudson: An introduction to the study of literature : P: 144 (1942)

प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। इसका कारण है पात्र की मानसिक स्थिति। इसका विश्लेषण करना भी उपन्यासकार के लिए आवश्यक है।

पात्रालेखन की प्रमुख विधियाँ : उपन्यासकार अपने पात्रों का आलेखन प्राय: दो प्रकारसे करता है : (१) प्रत्यक्ष चित्रण-विधि (डायरेक्ट डेलिनीशन आर एनालायटिकल) और (२) अप्रत्यक्ष चित्रण-विधि (इनडायरेक्ट डेलिनीशन आर ड्रामेटिक)।

प्रत्यक्ष चित्रणथविधि : नाटककार को जो कुछ भी कहना होता है वह पात्रों के द्वारा कहता है, परन्तु उपन्यासकार को स्वयं भी अपने पात्रों के विषय में कहने की सुविधा है। लेकिन इसके साथ ही उसका दायित्व भी द्विगुणीत हो जाता है कि वह इन अधिकारों का उचित उपयोग करके स्वाभाविक चरित्रों का निर्माण करें। प्रत्यक्ष चित्रणथविधि भी दो प्रकार की होती है : (१) वर्णनात्मक-विधि (बाय डीस्क्रीप्सन) और (२) मनोविश्लेषणात्मक-विधि (बाय सायकोलोजिकल एनालेसिस)। वर्णनात्मक विधि का उपयोग प्राय: बाहरी व्यक्तित्व (बाहरी आपा) के निर्माण के लिए किया जाता है। इसमें पात्र का कम नाम-धाम, वय, रंग, कद, रूप, पहिनावा, पसन्द-नापसन्द, आदत, तकिया-कलाम आदि सबका वर्णन होता है।[१]

---

१ द्रष्टव्य : " मिर्जा खुर्शेद गोरे-चिट्टे आदमी थे, भरी-भरी मूँछें, नीली आँखें, दुहरी देह, चाँद के बाल सफाचट, छकलिया अचकन और चूड़ीदार पाजामा पहनते थे। ऊपर से हैट लगा लेते थे। वोटिंग के समय चौंक पड़ते थे और नेशनालिस्टों की तरह से वोट देते थे। सूफी मुसलमान थे। दो बार हज कर आए थे, मगर शराब खूब पीते थे। " : प्रेमचन्द : गोदान : पृ० ६६।

मनोविश्लेषणात्मक विधि का उपयोग प्राय: भीतरी व्यक्तित्व (भीतरी आपा) के चित्रण में होता है ।[१]

अप्रत्यक्ष या परोक्ष चित्रण-विधि : आजकल उपन्यासों में इस विधि का प्रचलन बढ़ने लगा है ।इसमें उपन्यासकार अपनी वाणी पर नियंत्रण रखता है । वह सृष्टा की भाँति अपनी सृष्टि में छिप जाता है ।[२] पाठक स्वयं पात्र से उसका परिचय प्राप्त करते हैं । पाठक एवं पात्रों के बीच में वह बारम्बार नहीं आता । डा० दशरथ ओझा के मतानुसार " चरित्र-चित्रण की यह विधि अधिक दुरूह है । परन्तु यदि इसका सफल प्रयोग किया जाय तो प्रत्यक्ष विधि की अपेक्षा वह अधिक कलात्मक होती है ।[३] " इसमें दो प्रकार से चित्रण हो सकता है : (१) कथोपकथन द्वारा , (२) क्रिया-कलाप द्वारा ।

(१) कथोपकथन द्वारा : इस प्रकार के चित्रण में तीन प्रकार के उदाहरण मिलते हैं : (क) स्वगत कथन : वैसे आजकल इसका प्रयोग कम होता है तथापि पात्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इसमें बड़े सुन्दर ढंग से मिल सकता है ।मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में इसका उपयोग होता भी है । 'परख' उपन्यास के नायक सत्यधन को 'सोच' की बीमारी लगी हुई है ।वह अकेले में सोचता रहता है । एक दिन वह अपने विचार एक पन्ने पे- पर

---

१ द्रष्टव्य : " बिहारी बड़ा निर्द्वन्द्व आदमी है । बचपन से ही उसे आराम और पैसा मिलता है, इससे इन दोनों चीजों से उसकामन जैसे भरा हुआ है । वह इसकी ज़रा भी परवाह नहीं करता । वह ज़िन्दगी में रोमांस चाहता है । जोखिम को वह प्यार करता है । " : जैनेन्द्रकुमार : परख :पृ० ३० ।

२ "The author in his work must be like ~~the-god~~ God in the universe, present everywhere and visible no where :The ~~Novle-of-the-people~~ Novel and the People Ralph Fox P: 112.

३ डा० दशरथ ओझा : समीक्षाशास्त्र : पृ० १६४ ।

लिखता है। उसका यह कार्य भी एक प्रकार से स्वगत-कथन की कोटि में आ सकता है।[१]

(ख) दूसरी वह विधि है जिसमें पात्र स्वयं अपना परिचय देता है।[२]

(ग)तीसरी वह विधि है जिसमें दूसरे पात्र किसीके विषय में अपना मत प्रकट कर उसका चरित्र उद्घाटित करते हैं। इस प्रकार कहनेवाले पात्रों का चरित्र भी अपने आप उद्घाटित हो जाता है।[३] हैमिल्टन ~~केमतानुसार~~ के मतानुसार यह विधि अत्यन्त सूक्ष्म एवं कठिन है।[४]

---

१ द्रष्टव्य : ' यह दुनिया एक है। अनेकों --- ऐसी-ऐसी असंख्य दुनियाओं में से एक है। मैं उस पर एक नगण्य बिन्दु हूँ --- फिर अहंकार कैसा ?..... इस अनादि-अनन्त काल-सागर के विस्तार में मेरे सादि-सान्त जीवन बुदबुद की भी क्या कुछ गणना है ?' : जैनेन्द्रकुमार : परख : पृ० १० ।

२ द्रष्टव्य : ' मैं उस रसिक समाज से बिल्कुल बाहर हूं मिस्टर खन्ना, सच कहता हूँ.... मैं उस आदमी को आदमी नहीं समझता जो देश और समाज की भलाई के लिए उद्योग न करें। और बलिदान न करें। मुझे क्या यह अच्छा लगता है कि निर्जीव किसानों का खून चूसूं और अपने परिचय वालों की वासनाओं की तृप्ति के साधन जुटाऊं, मगर करूं क्या ? जिस अवस्था में पला अ और जिया, उससे घृणा होने पर भी उसका मोह त्याग नहीं सकता।' : प्रेमचन्द : गोदान : पृ० ६२ ।

३ 'गोदान' में मेहताजी के चरित्र का कुछ आभास रायसाहब और खन्ना के वार्तालाप से मिलता है --' बोले --' मेहता कुछ अजीब आदमी है, मुझे तो कुछ बना हुआ-सा मालूम होता है।'..... बोले --' मैं तो उन्हें केवल मनोरंजन की वस्तु समझता हूँ। कभी उनसे बहस नहीं करता और करना भी चाहूँ तो इतनी विद्या कहां से लाऊं ? जिसने जीवन के क्षेत्र में कभी कदम भी न नहीं रखा वह अगर जीवन के विषय में कोई नया सिद्धांत अलापता है, तो मुझे उस पर हंसी आती है।'.... मैंने सुना है चरित्र का भी अच्छा नहीं है। : प्रेमचन्द : गोदान : पृ० ।

हैमिल्टन के मतानुसार यह विधि अत्यन्त सूक्ष्म एवं कठिन है।[१]

(२) कार्य-कलाप द्वारा : अन्ततः मनुष्य की परीक्षा उसके कार्यों से होती है। अतः उपन्यासों में भी विभिन्न कार्य-कलापोंद्वारा पात्रों के चरित्र को उद्घाटित किया जाता है।

पात्रों का वर्गीकरण : यह शीर्षक थोड़ा हास्यास्पद लगता है क्योंकि उपन्यास के पात्र हमारी अपनी दुनिया के पात्र हैं। दुनिया के लोगों के चेहरे-मोहरे उसमें हमें मिलते हैं। और इन लोगों को अलग अलग खानों में विभाजित नहीं किया जा सकता। तथापि कुछ विद्वानों ने उपन्यासों में चित्रित पात्रों को वर्गीकृत किया है, जिस पर नीचे संक्षेप में विचार किया जारहा है।

(१) व्यक्ति-प्रधान चरित्र (इनडिविड्युल करेक्टर)

(२) वर्ग-प्रधान चरित्र (टायपिकल करेक्टर)

(३)स्थिर चरित्र (स्टेटिक करेक्टर)

(४) गतिशील चरित्र (किनेटिक करेक्टर)

व्यक्ति-प्रधान चरित्र में निजी विशेषतायें होती हैं। वे साधारण लोगों से कुछ विलक्षण होते हैं। 'परख' का बिहारी, 'सुनीता' का हरिप्रसन्न, 'शेखर एक जीवनी' का शेखर, 'मुक्तिबोध' की नीलिमा आदि इसके उदाहरण हैं। वर्ग-प्रधान चरित्र अपनी जाति या वर्ग के प्रतिनिधि बनकर आते हैं। 'गोदान' के रायसाहब, 'परख' का सत्यधन, 'मुक्तिबोध' के ठाकुरसाहब, 'जल टूटता हुआ' के महीपसिंह, 'अलग अलग वैतरणी' के जैपालसिंह तथा 'राग दरबारी' के वैद्यजी आदि चरित्र इस कोटि में आते हैं। स्थिर चरित्रों में बहुत कम परिवर्तन होता है।तो गतिशील चरित्रों में उत्थान-पतन के कई मोड़ आते हैं।

---

१ "Perhaps the most delicate means of indirect delineation is to suggest the personality of one charecter by exhibiting his effect upon certain other people in the story."

`गोदान` का होरी, `मुक्तिबोध` की राजेश्वरी, `जल टूटता हुआ` के अमलेशजी आदि स्थिर चरित्र हैं तो `गोदान` का गोबर, `रतिनाथ की चाची` का रतिनाथ, `गबन` की जालपा, `सेवासदन` की सुमन, `प्रेम अ पवित्र नदी` के विष्णुपद, विजयलक्ष्मी तथा शिवानी आदि गतिशील चरित्रों में आते हैं। वस्तुत: कोई पात्र न नितान्त व्यक्ति-प्रधान होता है न वर्ग-प्रधान। लेखक का उद्देश्य यदि किसी एकामेल पात्र की सृष्टि हो तो बात दूसरी है। पात्र वर्गयुक्त होने के कारण वास्तविक होता है तो व्यक्तित्वयुक्त होने के कारण विश्वसनीय।[१] कुछ लोगों ने मनोविज्ञान के आधार पर एक्स्ट्रोवर्ट (बहिर्मुखी) और `इनट्रोवर्ट (अन्तर्मुखी) जैसे भेद भी किये हैं। इस सन्दर्भ में केवल इतना कहना समीचीन होगा कि पात्र किसी भी वर्ग के हों वे तभी सफल माने जायेंगे जब वे हमारे प्रतिरूप होंगे।

कथोपकथन : पात्रों के परस्पर के वार्तालाप को कथोपकथन कहते हैं। उसका सम्बन्ध कथावस्तु तथा पात्र दोनों से है। जो वार्तालाप कथानक को अग्रसर नहीं करता या चरित्र पर प्रकाश नहीं डालता वह चाहे कितना भी सजीव क्यों न हो, उपन्यास में उसका मूल्य दो कौड़ी का भी न होगा। उपन्यास के इसी तत्व के कारण ही उसे जेबी-थियेटर कहा गया है। इसके कारण उपन्यास में सहजता एवं स्वाभाविकता आती है। कथोपकथन के निम्नलिखित चार प्रमुख उद्देश्य माने जा सकते हैं: (१) वास्तविकता एवं सरसता का निर्माण, (२) कथा का विकास, (३) चरित्र-सृष्टि तथा (४) विचार या सिद्धान्त का निरूपण।

---

१ "Every great character of fiction exhibit, therefore, an i~~nt~~ intimate combination of the typical and individual traits It is through being typical the character is true; it is throgh being individual that the character is convincing."

वार्तालाप के कारण हम पात्रों की भावभूमि एवं परिवेश से परिचित होते हैं। इससे हमें एक जीवन्त सृष्टि का अनुभव होता है। पात्रों के वार्तालाप में हमें उनके दैनिक जीवन की झलक मिलती है। भाषा, बोली, जाति तथा प्रदेश आदि की विशेषताएँ वार्तालाप द्वारा ही प्रकट होती हैं : और इन विशेषताओं से मण्डित वार्तालाप वास्तविकता का निर्माण करता है। वार्तालाप से नीरस प्रसंग भी सरस एवं ताजगीपूर्ण हो उठता है और वातावरण में नाटकीयता आ जाती है। सुकरात के विषय में प्रसिद्ध है कि वह अपने दार्शनिक विचारों की नीरसता को कथोपकथन के माध्यम से सरस बना देता था।

दूसरे उपन्यास में कथोपकथन का प्रयोग कथा के विकास को लक्ष्य में रखकर किया जाता है। कथोपकथन कथा के स्वाभाविक विकास में सहायक होने चाहिए। लेखक को जब कथा का विस्तार अनावश्यक प्रतीत होता है तब कथोपकथन की सहायता से वह घटनाओं को इंगित करता हुआ उन्हें कार्य-कारण श्रृंखला से आबद्ध कर देता है। इससे शिल्प अधिक निखर उठता है।

तृतीयत: कथोपकथन चरित्र-सृष्टि का एक मुख्य साधन है। इसके माध्यम सेपात्र की चारित्रिक विशेषताएं एवं उसके अन्तर्मन की कुंठाएं अभिव्यक्त होती रहती हैं। वाणी मनुष्य की सही पहचान है। अत: उपन्यास के वार्तालाप से हम उसके पात्रों का निकट से परिचय प्राप्त करते हैं।

चौथे आधुनिक उपन्यासकार कथोपकथन के माध्यम से अपने न होने की क्षति-पूर्ति भी करते हैं। प्रारम्भिक उपन्यासों में लेखक अपने आपको तटस्थ नहीं रख पाता था और अक्सर पाते ही दो-चार पंक्तियों से लेकर दो-चार पृष्ठों तक वह पाठक एवं कथा-प्रवाह में व्यवधान बनता था। आधुनिक उपन्यासकार अपने सिद्धान्तों एवं विचारों की अभिव्यक्ति कथोपकथन द्वारा करता है।[१]

---

१ द्रष्टव्य : नीलिमा का कथन : "आदमी सपने के लिए जीता है और औरत उस सपने के आदमी के लिए जीती है।..... राजनीति कब अनीति नहीं थी ? शब्द ये हार के हैं नीति-अनीति। हार को अपनाने के लिए तुम इन शब्दों को टटोल रहे हो.... पर स्त्री की और उसके प्रेम की आंख शब्दों के पार देख सकती है।" : जैनेन्द्रकुमार : मुक्तिबोध : पृ० ६२-६४।

प्रसिद्ध कवि वाल्टर सेवेज़ लैण्डर का कहना था कि प्रत्येक युग में सर्वश्रेष्ठ लेखकों ने कथोपकथन की शैली में ही अपने विचारों को प्रकट किया है। परन्तु इसके लिए उसे उपयुक्त पात्रों का निर्माण करना चाहिए। अज्ञेयजी के 'नदी के द्वीप' में अंग्रेजी कविता के कई उद्धरण पात्रों के कथोपकथन में आये हैं: परन्तु इसके लिए अज्ञेयजी ने ऐसे ही बौद्धिक पात्रों का चयन किया है।

<u>कथोपकथन के गुण</u>: प्रेमचन्दजी ने कथोपकथन की समीचीनता के सम्बन्ध में लिखा है: 'उपन्यास में वार्तालाप जितना अधिक हो और लेखक की कलम से जितना कम लिखा जाय उतना ही उपन्यास सुन्दर होगा। वार्तालाप केवल रस्मी नहीं होना चाहिए। प्रत्येक वाक्य को जो किसी चरित्र के मुंह से निकले उसके मनोभावों और चरित्र पर कुछ न कुछ प्रकाश डालना चाहिए। बातचीत का स्वाभाविक, परिस्थितियों के अनुकूल, सरस और सूक्ष्म होना ज़रूरी है।[१] मुंशी प्रेमचन्दजी के इस कथन में कथोपकथन के सभी गुण आ गये हैं। उनका घटना और पात्रों के अनुकूल होना प्रथम शर्त है। उनको देश, काल और परिस्थिति के अनुरूप भी होना चाहिए। कथोपकथन की भाषा पात्रानुकूल होनी चाहिए। 'कंकाल' के सभी पात्र संस्कृत-गर्भित भाषा बोलते हैं। वह उन पात्रों की भाषा नहीं है वरन् प्रसादजी की भाषा है। प्रेमचन्द स्कूल के उपन्यासकारों में पात्रानुकूल भाषा का गुण विशेषत: पाया जाता है। आंचलिक उपन्यासों की तो यह मुख्य विशेषता है।

कथोपकथन की भाषा ही नहीं वरन् उसका विषय भी पात्रों के मानसिक धरातल के अनुरूप होना वांछनीय है। देहाती या अनपढ़ व्यक्ति के मुंह में फ्रायड या मार्क्स के सिद्धान्तों को रख देना औचित्य की सीमा को भंग करने वाला ही नहीं, वरन् हास्यास्पद लगता है। लेखक को चाहिए कि वह अपने विचारों एवं सिद्धान्तों के निरूपण के लिए तदनुकूल पात्रों की सृष्टि करें।

---

१ प्रेमचन्द: 'कुछ विचार': पृ० १०३।

इस प्रकार उसमें पात्रानुकूल वैचित्र्य के साथ ही स्वाभाविकता, सार्थकता, सजीवता और संक्षिप्तता के गुण होना वांछनीय है।[1]

कुछ आधुनिक उपन्यासों में वार्तालाप की न्यूनता मिलती है। डायरी, पत्र आदि शैली के उपन्यासों में वार्तालाप की कम गुंजाइश है। कामू का 'पतन' (धी फाल) 'प्लेग' आदि उपन्यास इसी प्रकार के हैं। निष्कर्ष यह कि यह सहायक तत्व है, अनिवार्य नहीं।

देशकाल : देशकाल या वातावरण का चित्रण उपन्यास की वास्तविकता में वृद्धि करता है। मनुष्य बहुधा देशकाल की उपज होता है। अंग्रेज स्वभावत: रीज़र्व्ड, अमरिकन व्यवसायी, जर्मन वैज्ञानिक एवं भारतीय धर्मभीरू होता है। गुजरात में हिसाबी के लिए 'अमदावादी' और मन-मौजी या रंगीले व्यक्ति के लिए 'सूरतीलाला' शब्द-प्रयोग होता है। स्थल की भांति काल या समय भी व्यक्ति के वैचारिक धरातल को प्रकाशित करता है। सामन्तकालीन व्यक्ति का चिन्तन गांधीवादी का नहीं हो सकता। अत: उपन्यास में भी देशकाल का महत्व बढ़ जाता है। बाबू गुलाबराय के शब्दों में " व्यक्ति के निर्माण में वातावरण का बहुत कुछ हाथ है-।-- होता है। जिस प्रकार बिना अंगूठी के नगीना शोभा नहीं देता उसी प्रकार बिना देशकाल के पात्रों का व्यक्तित्व भी स्पष्ट नहीं होता है और घटना-क्रम के समझने के लिए भी इसकी आवश्यकता होती है। आजकल बढ़ते हुए वस्तुवाद के समय में देशकाल का महत्व और भी बढ़ गया है[2]। "प्रसिद्ध रूसी औपन्यासिक दोस्त्योवस्की ने एक स्थान पर लिखा है कि" पात्र इतने यथार्थ हों कि हम उनमें अपने-आप को रख सकें और वातावरण इतना यथार्थ हो कि हम उसमें चल-फिर सकें।[3] "

---

१ डॉ० गुलाबराय : 'काव्य के रूप' : पृ० १९८।

२ वही : पृ० १९८।

३ 'हिन्दी उपन्यास' : सं० डॉ० सुषमाप्रियदर्शिनी : पृ० २५।

आजकल के कुछ उपन्यासों में तो देशकाल का चित्रण वैज्ञानिक सीमा तक पहुंच गया है। पश्चिम में हार्डी के वैसेक्स नावेल्स अपने 'जीओग्राफिकल सेटिंग' के लिए विख्यात हैं। इसी तत्व के आधार पर अँग्रेजी में आयरिश नावेल्स - ल्स, स्कोच नावेल्स, जैसे कुछ प्रकार प्रचलित हुए हैं। हिन्दी में ~~आंचलिक~~ आंचलिक उपन्यासों के लिए तो देशकाल या वातावरण मानो प्राणतत्व ही है। नागार्जुन के उपन्यासों में बिहार का दरभंगा जिला और रेणु में पूर्णिया जिला मानो मूर्तिमन्त हो उठे हैं। 'राग दरबारी' का शिवपालगंज, 'मैला आंचल' का मेरीगंज, 'सागर लहरें और मनुष्य' की बरसोवा बस्ती तथा 'बूंद और समुद्र' में चित्रित लखनऊ का चौक मुहल्ला पाठक की स्मृति में दीर्घ काल तक उमड़ता-घुमड़ता रहेगा। गुजराती नवलकथाकारों में ईश्वर पेटलीकर के उपन्यासों में चरोतर प्रदेश (गुजरात का खेड़ा जिला), पन्नालाल पटेल में उत्तर गुजरात, मेघाणी तथा पुष्कर चन्दावरकर में सौराष्ट्र एवं कच्छ की धरती की धड़कनों को हम स्पष्टतया सुन सकते हैं।

वातावरण के उपयुक्त चित्रण के लिए देश (स्थल) एवं काल (समय) का सम्यक् ज्ञान आवश्यक है। बिना काश्मीर गये या बिना अमेरिका या योरोप गये इन प्रदेशों का वर्णन नहीं कर सकते। ऐतिहासिक उपन्यासों में किसी काल-विशेष के चित्रण के लिए इतिहास एवं पुरातत्व के ज्ञान का सम्बल लिए बिना नहीं चल सकता। "जो वस्तु जहां की उपज नहीं, उसका वहां दिखाना अथवा जो प्रथा जिस काल में प्रचलित न थी उसका उस काल में चित्रित करना भारतीय समीक्षा-शास्त्र में क्रमशः देश और काल विरुद्ध दूषण माने गये हैं। आगरा की सड़कों पर देवदारु के वृक्षों को दिखाना अथवा शिमला शिमला में लू चलने या करील की कुंजों का वर्णन करना देश-विरुद्ध दूषण होगा और अकबर के समय में उनके किसी मुसाहिब को टाई सम्हालते हुए दिखाना काल-विरुद्ध दूषण होगा।[१] हिन्दी में किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों

---

१ डॉ० गुलाबराय : 'काव्य के रूप' : पृ० १६६।

में इस प्रकार के दोष बहुतायत से मिलते हैं। ऐसे दोषों से उपन्यास की यथार्थता अविश्वसनीय और प्रत्युत उसकी कलात्मकता को व्याघात पहुंचता है।

कई बार उपन्यास में वातावरण का चित्रण पात्र की मानसिकता को व्यंजित करता है। घटना की पृष्ठभूमि के रूप में वातावरण का चित्रण उपन्यास में काव्यात्मकता, कलात्मकता एवं चमत्कार की सृष्टि करता है। " जैसे किसी के मरते समय दीपक का बुझ जाना, सूर्य का अस्त हो जाना अथवा घड़ी का बन्द हो जाना वातावरण में अनुकूलता उत्पन्न कर शब्दों को एक विशेष शक्ति प्रदान कर देता है।[१] "प्रकृति का इस प्रकार से प्रतीकात्मक चित्रण अब उपन्या उपन्यासों में बढ़ने लगा है।

घटना के प्रभाव को घनीभूत करने के लिए भी वातावरण का उपयोग होता है। मृत्यु की घटना के चित्रण में कुत्ते का रोना या उल्लू का बोलना उसकी भयंकरता को शतश: बढ़ा देता है। डा० गुलाबराय ने आंग्ल लेखक स्टीविन्सन को उद्धृत करते हुए लिखा है : " कुछ अन्धकारमय उपवन हत्या का आवाहन करते प्रतीत होते हैं, कुछ पुराने मकान भूत-प्रेतों के अस्तित्व की मांग करते हैं और कुछ भयानक समुद्रतट जहाजों के टकराने के लिए पहले से ही निर्धारित कर दिए गए हैं।[२]"

इस प्रकार वातावरण या देशकाल का चित्रण उपन्यास में पृष्ठभूमि का निर्माण कर उसे वास्तविक रूप प्रदान करता है। वह पात्रों की तस्वीरों के लिए 'बेकग्राउन्ड' और 'फ्रेमवर्क' का कार्य करता है।

---

१ डॉ० गुलाबराय : 'काव्य के रूप' : पृ० १६६-१७० ।

२ द्रष्टव्य : " Certain dark gardens cry aloud for murder, certain old houses demand to be haunted. Certain coasts are set apart for ship-wrecks."

: 'काव्य के रूप' : पृ० १६६ ।

विचार और उद्देश्य या जीवन-दृष्टि : उपन्यास कोई भी स्पष्ट विचार, उद्देश्य या जीवन-दृष्टि को केन्द्र में रखकर लिखा जाता है। इस विचार या जीवन-दृष्टि की दृढ़ अभिव्यक्ति ही उसे मनोरंजन मात्र के लिए लिखे गये कथा-साहित्य से पृथक करती है। यह जीवन-दृष्टि हमें समूचे उपन्यास में आद्यान्त मिलती है। प्रारम्भ में हिन्दी के उपन्यास मनोरंजन, उपदेशवादिता एवं समाज-सुधार को ध्यान में रखकर लिखे गए थे। प्रेमचन्दजी के प्रारम्भिक उपन्यासों में उपदेशवादिता एवं समाज-सुधार की भावना बलवती दिखती है : परन्तु बाद में उनकी दृष्टि यथार्थ प्रधान होती गई है। वैसे प्रेमचन्दजी अपने उपन्यासों का उद्देश्य 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' बताते हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क अपने उपन्यासों में चित्रित यथार्थवाद को 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' (क्रिटीकल रीआलिज़्म) नाम देते हैं।

कुछ विद्वान 'शिल्प' को ही कला का उद्देश्य मानते हैं। इस प्रकार का का आन्दोलन साहित्य में 'फार्मालिज़्म' के रूप में आया है, परन्तु हमारे ~~विनम्र~~ विचार से 'फार्म' साधन तो हो सकता है, साध्य नहीं। मुंशी प्रेमचन्दजी लिखते हैं : "'कला के लिए कला' का समय वह होता है जब देश सम्पन्न और सुखी हो। जब हम देखते हैं कि हम भाँति-भाँति के राजनीतिक और सामाजिक बन्धनों से जकड़े हुए हैं, जिधर निगाह उठती है उधर दु:ख और दरिद्रता के भीषण दृश्य दिखलाई देते हैं, विपत्ति का ~~कर~~ करुण क्रन्दन सुनाई देता है तो कैसे सम्भव है कि किसी विचारशील प्राणी का हृदय न दहल उठे?[१]" नयी पीढ़ी के सशक्त उपन्यासकार मोहन राकेश भी प्रेमचन्दजी की बात को ही समर्थित करते दीख रहे हैं : "पुरानी परम्पराएं हमसे छूटती जा रही हैं और नयी परम्पराएं विकसित नहीं हो पा रही हैं। ~~हममें~~ हमारी इकाइयों में उबलती हुई भावना विद्यमान है पर उस भावना के सामूहिक उफान के अवसर नहीं आ पाते। आज वर्तमान की यह संकुल पृष्ठभूमि हमें प्राप्त है। इस पृष्ठभूमि के आगे तेजी से बनते हुए इतिहास की साक्षी में, हम जो कुछ देख रहे हैं, ~~जैसे~~

---

१ प्रेमचन्द : 'कुछ विचार' : पृ० ४२ ।

जो कुछ अनुभव कर रहे हैं, जैसे जीना चाहते हैं और जैसे जी रहे हैं --- इस सबका चित्रण आज के उपन्यास में नहीं तो और कहां होगा ?[1] दोनों लेखकों का अन्तिम प्रश्न उपन्यास की यथार्थधर्मिता की ओर इंगित करता है।

हिन्दी में जैनेन्द्रकुमार तथा अज्ञेयजी जैसे कुछ लेखक व्यक्तिवादी चिन्तन को लेकर आगे बढ़ रहे हैं, किन्तु उसके मूलमें भी यथार्थवादी चेतना ही उपलब्ध होती है, जिसे हम चैतसिक यथार्थवाद कह सकते हैं। यूरोपीय साहित्य को नयामोड़ देनेवाली उपन्यासकार कुमारी वर्जीनिया वुल्फ ने नये साहित्य के बारे में कहा है कि " भले ही यह असम्बद्ध और अप्रासंगिक जान पड़ता हो किन्तु नये लेखक उस पटल का अन्वेषण करना चाहते हैं जिस पर प्रत्येक दृश्य और घटना अंकित होकर हमारी चेतना को प्रभावित करती है।" इसमें बाह्य संघर्ष का व्यक्ति के अन्तर्मन पर क्या प्रभाव पड़ता है, यही बताने की चेष्टा होती है।

प्रत्येक उपन्यासकार की अपनी एक जीवन-दृष्टि होती है, जैसे जैनेन्द्रकुमा कुमार में आत्मपीड़न का जीवन-दर्शन, अज्ञेय में ' बौधिक निरपेक्षता ' का क्षण-में सिद्धान्त, भगवतीचरण वर्मा में नियतिवादी चिन्तन। यह दृष्टि उसके लेखन में प्रत्येक पृष्ठ में प्रतिबिम्बित होती रहती है।

यहां एक बात विचारणीय हैकि यह दोनों प्रकार का यथार्थवाद--- सामाजिक एवं वैयक्तिक ---- कृति में शुद्ध मानवीय संवेदनात्मक रूप में उद्भूत होना चाहिए। किसी भी प्रकार का, मार्क्सवादी या मनोविज्ञान सम्बन्धी चिन्तन यदि कृति में आरोपित होकर आया तो उससे उसकी कलात्मकता को व्याघात पहुँचेगा ही। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में यह प्रवृति यत्र-तत्र मिलती है।

इससे जुड़ा हुआ एक और प्रश्न है ---- समसामयिक समस्याओं का निरूपण। इस निरूपण में लेखक की जीवन-दृष्टि कार्यशील होती है। यह अवश्य है कि समसामयिक समस्याएं विगत जीवन की वस्तु हो सकती हैं, किन्तु

---

१ मोहन राकेश : ' उपन्यास और यथार्थ-चित्रण ' लेख : आलोचना- १३ ।

अनेक समस्याएं नया रूप भी धारण करके आती हैं, उदाहरणार्थ `गुक्ता` के चन्दनहार का स्थान अब फ्रीज़,फिआट,फ्लैट (थ्री-एफ) से युक्त ज़िन्दगी ने ले लिया है।

शैली : बाणभट्ट के सम्बन्ध में यह किंवदन्ती प्रचलित है कि उसकी महान कृति कादम्बरी थोड़ी सी अपूर्ण थी और जब उसकी अन्तिम बेला आयी, तब उसने अपने दोनों पुत्रों को बुलाया और कहा : " सामने एक सूखा वृक्ष खड़ा है।" उसका वर्णन करो।" बड़े पुत्र ने कहा --- "शुष्कं काष्ठं तिष्ठत्यग्रे"। छोटे पुत्र ने इसी बात को दूसरे ढंग से कही --- "नीरस तरु रिह विलसति पुरत:"। बाणभट्ट ने अपनी कादम्बरी छोटे पुत्र मके हाथ में देकर सदा के लिए लिए आँखें मूंद ली। बात तो दोनों की एक ही है, पर कहने का ढंग अलग- अलग है। एक ही प्रकार के जीवनानुभव को कई प्रकार से अभिव्यक्त किया जा सकता है। नीचे एक ही प्रकार के कथ्य को लेकर दो अभिव्यक्तियां दी जा रही है :

(१) " साली, अपनी भी कोई ज़िन्दगी है। कुत्ते बिल्लियों की तरह जीना पड़ रहा है।"

(२) " समन्दर का किनारा था। सूरज अस्ताचल की ओर जा रहा था। लश्करी-छावनी का एक सिपाही वहां खड़ा था। दूर दूर दिगन्त तक उसकी आँखें न जाने किसे खोज रही थी। अचानक उसने देखा कुछ पंछी अपने नीड की ओर जा रहे थे। वह सोचता है। पंछियों को भी आखिर अपना एक घर होता है।"

ऊपर के दोनों उद्धरणों में बात एक ही है। परन्तु कहने का ढंग अलग है। लेखन का यही ढंग शैली कहलाता है[१]। कथ्य या विचार यदि आत्मा है तो शैली शरीर, जिसके द्वारा आत्माभिव्यक्ति होती है।[२]

---

१ 'Style is the technique of expression.'

:The problem of style : P-5.

२ 'Style is the body to which thought is the soul and through which it expresses itself:'

A premier of literary criticism: P-3.

उपन्यास में सामाजिक एवं ऐतिहासिक तथ्यों को शैली के द्वारा बोध-कराया जाता है। अत: उसमें प्रसाद गुण का प्राधान्य होता है। वैसे प्रसंगा-नुरूप ओज एवं माधुर्य का सन्निवेश भी हो सकता है। कथा में प्रभाव एवं तीव्रता लाने के लिए लक्षणा व्यंजना शक्तियों का प्रयोग भी हो सकता है। मुहावरे एवं लोकोक्तियों के प्रयोग से उपन्यास की भाषा सहज एवं वास्तविक रूप धारण करती है। इस क्षेत्र में प्रेमचन्दजी ने कमाल की सिद्धि हासिल की थी। दूसरी प्रसिद्ध शैली है संस्कृत तत्सम सामासिक शब्दों से युक्त अलंकृत शैली।

शैलियों के और भी कई प्रकार है: जैसे समास शैली, व्यास शैली, धारा शैली, तरंग शैली, चित्रात्मक शैली तथा वर्णनात्मक शैली आदि। समास शैली शैली में संक्षिप्तता एवं सांकेतिकता रहती है। व्यास शैली में फैलाव रहता है। एक ही बात को अनेक उदाहरणों के द्वारा समझाकर कहने की प्रवृति रहती है। धारा शैली में शब्दों में एक प्रकार का प्रवाह रहता है। तरंग शैली में विचार रह रह कर असम्बद्ध रूप में आते रहते हैं। चित्रात्मक शैली में पाठक के मन:चक्षु पर जैसे चित्र अंकित किया जाता है तो वर्णनात्मक शैली में वर्णन की प्रधानता रहती रहती है। इन सभी शैलियों का प्रयोग उपन्यासकार आवश्यकतानुसार करते रहते हैं। वैसे तो प्रत्येक उपन्यासकार की एक खास शैली होती है, किन्तु वह कला-साधना में एकाधिक शैली-रूपों को अपना सकता है।

<u>उपन्यास की रचना-प्रक्रिया :</u> उपन्यासकार चाहे अपना विषय-वस्तु यथार्थ जगत से ले, वह उसका पुन: सृजन तो करता ही है। इस सृजन का सम्बन्ध रचना- प्रक्रिया से है। रचना-प्रक्रिया से जुड़ा हुआ एक प्रश्न है-- सृष्टि को हम एक सतत विकसनशील प्रवृति का परि-णाम मानते हैं या पूर्व-निर्धारित व पूर्व-नियोजित। जो उपन्यासकार पहले सिद्धान्त को मानकर चलते हैं वे उपन्यास की पूर्व-नियोजना नहीं बनाते। उनके पात्र व वस्तु परिस्थितियों के घात-प्रतिघात सहते हुए अपना सहज स्वाभाविक रूप बना लेते हैं। और जो उपन्यासकार सृष्टि को पूर्व-नियोजित मानते हैं वे

अपने उपन्यास का प्रारूप सामने रखकर सुनियोजित ढंग से आगे बढ़ते हैं जैनेन्द्र प्रथम प्रवृति के अन्तर्गत आते हैं, प्रेमचन्द दूसरी ।

उपर्युक्त घात-प्रतिघात के सफल अंकन में वैज्ञानिक तटस्थता एवं कलागत संयम अपेक्षित है। टी०एस० ईलियट के अनुसार य दि उपन्यासकार को हम सृष्टा का गौरव देना चाहते हैं तो उसे चाहिए कि वह सृष्टा की निस्संगता,तटस्थता एवं वैज्ञानिकता तथा अभूतपूर्व संयम का परिचय दें।[१] नायक और खलनायक दोनों के चित्रण में उसे समुचित न्याय से काम लेना चाहिए । हिन्दी के उपन्यासकारों में इस प्रकार की वैज्ञानिक तटस्थता एवं कलागत संयम सर्वाधिक मात्रा में अज्ञेय में दृष्टिगोचर होता है।

रचना-प्रक्रिया के सम्बन्ध में एक बात ध्यातव्य है कि रचना की उत्कृष्टता के लिए गहरे एवं यथार्थ जीवनानुभव की विशेष आवश्यकता रहती है। यथार्थ अनुभव ही वह सोना है जिससे कलाकृति का निर्माण होता है। अत: वह कलाकार जो जीवन में जितना ही ज्यादा डूबेगा उसकी कला में उतना ही ज्यादा निखार आयेगा। जीवन के सत्य को पकड़ने के लिए उसे सदा अपनी आँखें खुली रखनी चाहिए। अपने पात्रों के बाह्य-आभ्यंतर चित्रण के लिए उसे सदा ही यथार्थ जिन्दगी के पात्रों पर नजर रखनी चाहिए। इस सन्दर्भ में फ्लाबेयर के निजी जीवनानुभव की घटना को हम पूर्ववर्ती पृष्ठों में लक्ष्य कर चुके हैं। इस सम्बन्ध में पाश्चात्य उपन्यासकारों का अध्यवसाय एवं श्रम श्लाघनीय रहे है। सुप्रसिद्ध अमरिकी उपन्यासकार अर्नेस्ट हेमिंग्वे ने अपने उपन्यास 'फेयरवेल टु आर्म्स' के अन्तिम पृष्ठ को ३९ बार लिखा था।[२]

---

1. "There is always a separation between the man who suffers and the artist who creates; and the greater the artist the greater the separation."

2. I rewrote the ending to 'Farewell to Arms,' the last page of it, thirty nine times before I was safified : Ernest Heminiway :Writers at work - Second series (1963) :P-187.

P/TL 3528

उपन्यासकार को लेखन के पूर्व अपने कथ्य की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त कर विभिन्न स्रोतों द्वारा अपने अपने ज्ञान को व्यवस्थित कर लेना चाहिए । प्रसिद्ध-उपन्यासक- ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा उपन्यास-लेखन के पूर्व काफी परिश्रम करते थे । हजारीप्रसाद द्विवेदीजी के ऐतिहासिक उपन्यासों में भी परिश्रमजन्य ‘रीसर्च’ का आनन्द उपलब्ध होता है । अंग्रेजी के प्रसिद्ध औपन्यासिक जायस केरी ने बताया था कि वे अपनी रचना को समग्रता प्रदान करने के लिए कितने परिश्रम से शोधकार्य करते हैं ।[१] आल्डुस हक्सले ने भी अपने उपन्यास ‘ब्रेव न्यू वर्ल्ड’ में मैक्सिको शहर का अंकन करने के लिए विपुल सामग्री का अध्ययन किया था ।[२] ऐतिहासिक एवं आंचलिक उपन्यासों में तो इस प्रकार का अध्यवसाय निहायत आवश्यक माना जाता है ।

<u>उपन्यास का प्रयोजन</u> : उपन्यास का सम्बन्ध प्रत्यक्ष जीवन से है । कविता या अन्य किसी कला का सम्बन्ध केवल भाव-जगत से हो सकता है, उपन्यास का नहीं । अतः ‘कला जीवन के लिए’ वाला प्रयोजन ही उपन्यास के अधिक अनुकूल है । इस सम्बन्ध में मुंशी प्रेमचन्दजी के यह विचार उल्लेखनीय हैं : " ‘कला के लिए कला’ का समय वह होता है जब देश सम्पन्न और सुखी हो । जब हम देखते हैं कि

---

1. "Mr Cary explained that he was now 'Plotting' the Book. There was research Yet to be done. Research, he explained, was sometimes a bore, but it was necessary for getting the political and social background of his work right." :Joyce Cary: Writers at work First series (1958): P 60.

2. "I had to do an enormous amount of reading up on new Mexice because I had never been there. I read all sorts of smithsomian reports on the place and then did the best I could to imagine it----I do read up a good deal on my subject." Aldus Muxlay: Writers at work- Second Series (1963) :P.165.

भाँति भाँति के राजनीतिक और सामाजिक बन्धनों से हम जकड़े हुए हैं, जिधर निगाह उठती है उधर दु:ख और दरिद्रता के भीषण दृश्य दिखलाई देते हैं, विपत्ति का करुण क्रन्दन सुनाई पड़ता है तो कैसे कोई सम्भव है कि किसी विचारशील प्राणी का हृदय न दहल उठे ?"[१] महात्मा गांधी, लेनिन, टाल्सटाय आदि सभी साहित्य के इसी प्रयोजन का पत्ता लेते हैं।

उपन्यास को केवल कला के लिए मानना उचित भी नहीं है क्योंकि उपन्यास का सम्बन्ध वर्तमान बौधिक जगत से है। अनेक विचार-सरणियां नित्यप्रति आकार लेती रहती हैं। उपन्यासकार भी बौधिक होने के नाते इनसे जुड़ा हुआ रहता है। जमाना आपाधापी का है। इस यन्त्र-युग ने मनुष्य को भी यन्त्र बना दिया है। हमारी अनेकों समस्याएं हैं। इन समस्याओं को यदि उपन्यासकार वाणी नहीं देता तो वह अपना साहित्यिक-धर्म चूकता है। जिसका पोषण ही जीवन से हुआ है, वह भला जीवन का पोषण क्यों न करेगा ? वस्तुत: 'कला के लिए कला' वाद का जन्म फ्रान्स में हुआ और वह भी चित्रकला तथा कविता के सन्दर्भ में। उसे उपन्यास पर नहीं लागू किया जासकता। उपन्यास का उद्भव जिन परिस्थितियों में हुआ है और जिन परिस्थितियों में वह अभी सांस ले रहा है, उसमें यह सम्भव नहीं कि उपन्यासों का प्रणयन केवल कला या आनन्द के लिए हो। उपन्यास की यथार्थधर्मिता जीवनधर्मिता से जुड़ी हुई है, अत: जीवन से अलग इसका प्रयोजन नहीं हो सकता।

<u>अन्य काव्य-रूपों से तुलना</u> : साहित्य की अभी तक की विधाओं में उपन्यास सर्वाधिक नि:स्वरूप, जटिल एवं लचिला है। अत: उसके व्यववर्तक लक्षणों के आकलन के लिए उसकी अन्य काव्य-रूपों से तुलना करना अत्यावश्यक है क्योंकि प्रॉ० सैण्ट्सबरी के मतानुसार आलोचना के क्षेत्र में तुलनात्मक प्रवृति साहित्यिक न्याय व निर्णय के लिए सर्वोत्तम प्रवृत्ति है। (द्रष्टव्य : समीक्षाशास्त्र : डॉ० दशरथ ओझा : पृ० ८५)

---

१ प्रेमचन्द : 'कुछ विचार' : पृ० ४२।

उपन्यास का सम्बन्ध कथा साहित्य से होने के कारण यहाँ उसकी तुलना केवल कहानी,नाटक व महाकाव्य से ही की जायेगी ।

(१) उपन्यास और कहानी : उपन्यास और कहानी का सम्बन्ध एक ही कुल (कथा-साहित्य) से है किन्तु दोनों में आकार का ही नहीं वरन् प्रकार,प्रकृति व प्रवृत्ति का भी अन्तर है ।

कहानी का आकार इतना लघु होता है कि उसे एक ही बैठक में समाप्त किया जा सकता है । संसार की सबसे छोटी कहानी केवल कुछेक वाक्यों की है । रेल में फर्स्ट क्लास के डिब्बे में एक व्यक्ति अकेला सफर कर रहा है । रात्रि का समय है । चारों तरफ निबिड अन्धकार व शून्यता है । ऐसे में अचानक एक दूसरा आदमी आकर उससे पूछता है --- ' तुमने कभी भूत देखा है ?' अभी वह उसे देख ही रहा था कि वह आदमी गायब हो जाता है । बस कहानी समाप्त ।[१] परन्तु सामान्यतया कहानी एक - दो पृष्ठ से लेकर पन्द्रह-बीस पृष्ठ तककी होती है ।चालीस-पचास पृष्ठ वाली कहानियां अपवादस्वरूप ही मिलती हैं और अपवाद नियम नहीं हो सकता । जबकि उपन्यास का कलेवर सत्तर अस्सी पृष्ठों से लेकर हजारों पृष्ठों तक में फैला हुआ होता है । पचास पृष्ठ का उपन्यास हो सकता है परन्तु हजार पृष्ठ की कहानी कतई नहीं हो सकती । यही बात घटना व चरित्र पेर भी लागू होती है । कहानी व उपन्यास दोनों में तीन-चार पात्र व घटनाएं हो सकती हैं । जैनेन्द्र के कई उपन्यासों में दो-तीन ही मुख्य पात्र होते हैं । परन्तु कहानी में सैंकडों घटनाएं व हजारों पात्र नहीं हो सकते, जबकि उपन्यास में हो सकते हैं ।

शिल्प के दृष्टिकोण से कहानी प्राय: एक प्रभाव को ध्यान में रखकर लिखी जाती है और उस प्रभाव में बाधक हानेवाली अन्य सारी बातों को बहिष्कृत किया जाता है । ' बिना प्रयोजन अन्दर आने की इजाजत नहीं ' कहानीकार का मूल-मन्त्र कहा गया है ।[२] जबकि उपन्यास ऐसे सीमित धरातल के लिए प्रतिबद्ध नहीं है । उपन्यास समूचे जीवन या उसके बड़े भाग को आवरित

---

१ साहित्यिक निबन्ध : राजनाथ शर्मा : पृ० १०३-१०४ ।

२ काव्य के रूप : डा० गुलाबराय : पृ० १६८ ।

करता है जबकि कहानी में जीवन के किसी मार्मिक प्रसंग को उद्घाटित किया जाता है। जीवन के चित्रण के सम्बन्ध में उपन्यास का कैमेरा 'मूवी कैमेरा' है, जबकि कहानीकार का कैमेरा फोटोग्राफर का-सा है जो एक विशेष भाव-स्थिति को ही अंकित कर देता है। कहानी में चरित्र विकास की कोई गुंजायश नहीं। उसमें एक बने-बनाए चरित्र पर प्रकाश डाला जाता है, जबकि उपन्यास में चरित्र विकास का पूरा व सूक्ष्म ब्यौरा दिया जाता है। कहानी में यदि किसी पात्र का हृदय-परिवर्तन बताया जाय तो उसके मूल में कोई एक ही प्रधान व मार्मिक घटना होती है। जबकि उपन्यासकार पात्र पर पड़नेवाली अनेक घटनाओं के प्रभाव का चित्र अंकित करता है। कहानी में घटना, चरित्र-चित्रण वातावरण, शैली प्रभृति तत्वों में से किसी एक का ही प्राधान्य होता है जबकि उपन्यास में सभी का समुचित आकलन मिलता है।

(२) <u>उपन्यास और नाटक</u> : संसार के अनेक देशों में के साहित्य में नाट्य-साहित्य को दीर्घकालीन परम्परा मिली है, और एक समय यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण काव्यविधा मानी जाती रही है। अत: उसका रचना-संविधान काफी गढ़ा हुआ है। हड्सन महोदय के अनुसार वह एक मिश्रित कला है जिस में साहित्यिक तत्वों का मंचीय तत्व एवं एतिहासिक व्याख्याओं के साथ सुन्दर समन्वय होता है।[१] उपन्यास में जो स्थान संभावितता का है, नाटक में वैसा ही स्थान अभिनेयता का है। उपन्यास पाठ्य विधा है जबकि नाटक पाठ्य-दृश्य दोनों है।

बाह्यत: नाटक में कथोपकथन की और उपन्यास में कथानक की प्रधानता सर्वविदित है। उपन्यासकार उपन्यास की कथा से कितना ही तिरोहित क्यों न हो जाय उसकी सम्पूर्ण अनुपस्थिति प्राय: असम्भव है। उपन्यासकार की सृष्टि

---

१ "It (i.e. drama) is a compound art, in which the literary elements is organically bound up with the elements of stage-setting and Histrionic interpretations." An Introduction to the Study of Literature: William Henry Hudson: (1935): P- 169.

विश्वामित्र की-सी है जो अपनी सृष्टि में बीच-बीच में प्रकट होते रहते हैं जबकि नाटककार इस स्थिति से असंपृक्त ही रहता है। उसे जो कुछ भी कहना है, पात्रों के माध्यम से ही कह सकता है। उपन्यासकार जो कार्य वर्णनों से करता है, नाटककार वही मंच-निर्देशन (स्टेज डायरेक्शन) के द्वारा संपन्न करता है।

उपन्यास में वस्तु का उपस्थापन मन्थर गति से भी चल सकता है। जबकि नाटक में कार्य की द्रुतगामिता एवं संघर्ष की तीव्रता अपेक्षाकृत अधिक होती है। नाटककार को समय मर्यादा का ध्यान भी रखना पड़ता है क्योंकि आज के संघर्षशील एवं यान्त्रिक जीवन में दो-तीन घण्टों से अधिक समय कोई भी दर्शक नहीं देना चाहेगा। जबकि उपन्यास चाहे कितना भी बड़ा हो उसे अनेक बैठकों में कहीं भी और कभी भी पढ़ा जा सकता है। स्वयं इन पंक्तियों का लेखक कतारों में खड़े रहने के लिए उपन्यास का आश्रय अनेकों बार ले चुका है। आज के नाटकों में संकलन-त्रय का आग्रह भी बढ़ रहा है जबकि उपन्यासों में केवल नाटकीय उपन्यासों के अन्तर्गत ही उसका ध्यान रखा जाता है। घटनाओं का चुनाव उपन्यास में भी होता है, पर नाटक में उस पर अधिक ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है। नाटक का वस्तु चुस्त सुगुम्फित एवं नियमाधीन अधिक होता है, जबकि उपन्यास में नियमों का लचीलापन एवं स्वतन्त्रता को पाया जाता है।[१] बाहरी रूप-विधान तथा विधा-प्रयोग में उपन्यासकार नाटककार की तुलना में कहीं अधिक स्वतन्त्र है और प्रकारान्तर से वह कला-संयोजन में अधिक-सुविधा-भोगी बन सकता है। अतः नाटक और उपन्यास में कथाश्रय, यथार्थ की पकड़ आदि बातों के समान रहते हुए भी रचना-प्रक्रिया एवं संविधान में (स्ट्रक्चर में) काफी अन्तर है।

---

१ "The drama is the most rigorous form of literany art: Prose fiction is the loosest ---- This most elastic and irregular of all the great forms of literary expression." :An Introduction to the study of literature : William Henry Hudson: (1935): P:170.

उपन्यास और महाकाव्य : महाकाव्य पूरे युग का काव्य होता है। उसमें समूचे युग की तासीर होती है। परन्तु राल्फ़ फाक्स महोदय ने शायद अपने ग्रन्थ ' द नावेल एण्ड द पीपल ' में पहली बार कहा कि उपन्यास अपने बुर्जुआ समाज का महाकाव्यात्मक कला-रूप है[१] और तब से हम उपन्यास और महाकाव्य का समीकरण बिठाने में जुट गए। वस्तुत: उपन्यास और महाकाव्य दोनों भिन्न छोर पर हैं। दोनों में जीवन का चित्रण होता है, परन्तु उभय का दृष्टिकोण नितान्त भिन्न है। महाकाव्य को हम उपन्यास का स्थानापन्न नहीं मान सकते, क्योंकि प्रत्येक कला-रूप का जन्म अपने युग की सामाजिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकताओं को देखते हुए होता है। उपन्यास औद्योगिक क्रान्ति के बाद की स्वतन्त्र -चेतना की वैयक्तिक अभिव्यक्ति है जो निश्चय ही महाकाव्य के उद्‌भवकाल की परिस्थितियों से भिन्न भिन्न है। यहां हम उभय के वैषम्य का संक्षेप में विचार करेंगे।

महाकाव्य काव्य-प्रतिभा की प्रौढ़ता का परिणाम है। प्रतिभा-संपन्न कवि भी काव्य-लेखन की प्रौढ़ता प्राप्त कर लेने के बाद ही महाकाव्य के प्रणयन की दिशा में अग्रसर होता है जबकि उपन्यास में जहां उच्च और महान प्रतिभाशाली साहित्यकार मिलते हैं, वहां दूसरी ओर सामान्य प्रतिभावाले भी मिल जाते हैं।[२] उपन्यास मध्यम, निकृष्ठ या क्षुद्र हो सकता है, परन्तु कोई काव्य यदि महाकाव्य है तो वह निकृष्ट या क्षुद्र नहीं हो सकता क्योंकि वह महती प्रतिभा का प्रतिफलन है।

महाकाव्य में प्राय: विशिष्ट जीवन को लिया जाता है, जबकि उपन्यास सामान्य जीवन का लेखा-जोखा है। महाकाव्य का नायक धीरोदात्त-गुण समन्वित होता है, उसमें कोई होरी', हसनअली',चेतन' या ' काली' नायक के रूप में नहीं आ सकते। किसी उत्तुंग शिखर पर आसीन होकर संसार का जो न

---

१ " The novel is the epic art form of our modern, bourgeois Society." :The Novel and The People: Ralph Fox (1956): P. 72

२ देखिए : पृ० १६।

नज़ारा लिया जाता है, वह महाकाव्य है जबकि उपन्यास में हमें गलियाँ, कस्बों और स्लमों में ले जाता है। जीवन के चित्रण में उपन्यासकार की दृष्टि अनुवीक्षणीय होती है। नायक विषयक विभावना भी उपन्यासों में निरन्तर परिवर्तित हो रही है। उपन्यास नायक विहीन भी हो सकते हैं,जबकि नायक या नायिका विहीन महाकाव्य की हम कल्पना भी नहीं कर सकते। आंचलिक उपन्यासों में तो अंचल-विशेष ही उपन्यास का नायक होता है। 'राग दरबारी' का वास्तविक नायक 'शिवपालगंज' ही है। डॉ० रामरतन भटनागर के शब्दों में "महाकाव्य में विराट जीवन को प्रस्तुत किया जाता था, सूक्ष्म जीवन को नहीं, क्योंकि मनुष्य का व्यापक जीवन मानवीय होने के नाते साधारणीकरण की क्षमता रखता है। इसलिए महाकाव्य में घटनाचक्र अथवा चारित्रिक लेखन व्यक्तिगत न होकर प्रतीकात्मक रहता है।..... महाकाव्य महत् जीवन का काव्य है, विराट के प्रति महाकवि की श्रद्धांजलि है, भविष्यत् का नव-निर्माण है। उसमें समस्त जाति,समूचे राष्ट्र की आकांक्षा प्रतिध्वनित होती है और उसके पर्वताकार महा-दर्पण में अनागत पीढ़ियाँ अपना मुख देखती हैं। महाकाव्य वह देता है जो हम बनना चाहते हैं, उपन्यास की तरह वह नहीं जो हम हैं"।[१] जीवन के सामान्य एवं क्षुद्र कार्य-कलापों का वर्णन उपन्यास में हो सकता है, महाकाव्य में नहीं।[२]

---

१ डॉ० रामरतन भटनागर : लेख -- "उपन्यास और महाकाव्य" : 'हिन्दी-उपन्यास और : सिद्धान्त और विवेचन' सं० मक्खनलाल शर्मा : पृ० ५६-५६।

२ द्रष्टव्य : "एक डोकरी डबरी लिए हुए आयी और कमर तक घाघरा उठाकर हगने बैठ गई। वह अपने में खोयी हुई कुछ गुनगुना रही थी, खांस रही थी, रेत में अंगुली चलाकर जाने कैसे- कैसे चित्र बना रही थी। फिर उसने चल्लू में पानी लेकर छपक्-छपक् की आवाज़ निकाली और 'हर-हर' करती हुई खड़ी हो गयी।"
: मणि मधुकर : सफेद मेमने : पृ० ३१।

महाकाव्यकार की दृष्टि प्राय: अतीतोन्मुखी होती है, जबकि उपन्यास-कार हर हालत में अपने वर्तमान से जुड़ा हुआ रहता है । यहां तककि ऐतिहासिक उपन्यासों में भी ऐतिहासिक घटनाओं के द्वारा प्राय: साम्प्रतिक समस्याओं पर प्रकाश डाला जाता है । महाकाव्य प्राय: अतीत का काव्य होता है,जबकि उप-न्यास वर्तमान का । जब हम अपने अतीत पर दृष्टिपात करते हैं, बहुत-सी क्षुल्लक बातों की बादबाकी अपने आप हो जाती है, रह जाता है कुछ विशिष्ट । और अतीत की यह दूरता जितनी अधिक होगी क्षुल्लकता उतनी ही अधिक दूर जायेगी । महाकाव्यकार की दृष्टि उस वृद्ध की-सी है जो अतीत को ~~अहोभाव~~ अहोभाव से देखता है, उपन्यासकार की दृष्टि उस मनुष्य की-सी है जो वर्तमान को उसकी सभी अच्छाइयों-बुराइयों के साथ स्वीकार करता है । यहां गुजराती के लब्ध-प्रतिष्ठित विवेचक डॉ०सुरेश जोशी का यह मन्तव्य उल्लेखनीय है : " काल के द्रावण में हम सब बदल रहे हैं : अत: उपन्यास के पात्र-विधान में स्रष्टा द्वारा सर्जित काल का योगदान नगण्य नहीं है । महाकाव्य के पात्रों का ऐसा नहीं है, लिहाजा उन पात्रों में असाधारण लक्षणों को आरोपित किया जाता है । दशानन रावण और हनुमान की वह सृष्टि है । ऐसी असाधारणता उपन्यास के पात्रों के अनुकूल नहीं है । महाकाव्य के पात्रों को समूची एक जाति का 'मीथ' प्राप्त है जबकि उपन्यासकार को अपने पात्र आसपास की दुनिया से लेने होते हैं ।"[१]

उपन्यास आधुनिक युग की देन है ।आधुनिक युग पर बौधिकता एवं विज्ञान का बेहद प्रभाव है । उपन्यास में राम-नाम से पत्थर नहीं तैर सकते । यहां सूर्य या वरुण के मन्त्र से पुत्र-प्राप्ति भी नहीं हो सकती । नागार्जुन कृत 'इमरतिया' उपन्यास में जमनिया मठ के महन्त बाबा की पोल खोली गई है जिसमें औरतों को सिर्फ बेंत छूआने से संतति नहीं होती पर भगोतीप्रसाद तथा

~~लालताप्रसाद जैसे बड़े लोगों की पूर्तिम~~

---

१ डॉ० सुरेश जोशी : 'कथोपकथन' : पृ० ९६ ।

लालताप्रसाद जैसे कई लोगों की पूरी मशीनरी लगी हुई है।[१] महाकाव्य समष्टि चेतना का परिणाम है जबकि उपन्यास व्यष्टि चेतना का। और इसीलिए महाकाव्य का सृजन नियमों के अनुशासन में होता है जबकि उपन्यास एक स्वच्छन्द विधा है। उपन्यास साहित्यका वह कला-रूप है जिसमें वैयक्तिक एवं परिवर्तित दृष्टि को पूर्णतया परावर्तित किया गया है।[२] उपन्यासकार राम, लक्ष्मण, कृष्ण या अर्जुन को अपनी बौधिक कलादृष्टि से देखता है जबकि महाकाव्यकार उनको उस दृष्टि से देखेगा जिस दृष्टि से समाज या देश उनको देखता है।

साहित्य की किसी भी विधा में भाषाशैली का महत्व निर्विवादित है। यह भाषाशैली भी विधानुरूप होती है। एक ही साहित्यकार की कविता की भाषा और उपन्यास की भाषा में निश्चय ही अन्तर मिलता है। महाकाव्य विशिष्टता, विराटता, महत्ता, उदात्तता --- उदात्त कथानक, उदात्त कार्य, उदात्त भाव, उदात्त शैली --- का काव्य है।[३] जबकि उपन्यास साधारण समाज का -- हमारे आपका --- काव्य है। अतः महाकाव्य की भाषा जहाँ एक ऊँचाई, आभिजात्य एवं शालीनता लिए हुए रहती है वहाँ उपन्यास की भाषा पात्रानुकूल होनेसे सर्व-साधारण रहती है। महाकाव्य में साधारण भाषा का प्रयोग ग्राम्यत्व दोष बन जाता है, जबकि उपन्यास में ~~ऐसी भाषा~~ कई बार ऐसी भाषा का प्रयोग उसकी एक अभिन्न आवश्यकता हो जाता है। मूतनी, अल्लम-बल्लम, मड़वे, भेंच्चो, खूंसड़े, चिबर-चिबर, एंडा-बैंडा, बरगली-फरगली, फुंवारलाल (सफेद मेमने) : मुंहेरा, जमाकडो, टट्टी, हगना, टिप्पस, चिड़ीमार, बांगडू, कुकरहाव (राग दरबारी) आदिशब्दोंका प्रयोग जहाँ उपन्यास में

---

१ 'बेंत की पिटाई के बाद मेरीड्यूटी खत्म हो जाती थी। अगला मोर्चा दूसरे दूसरे फतह बहादुर संभालते थे। भगोती-लालता, रामजनम, सुखदेव का अपना अपना गिरोह था। यही लोग ठूंठ की कोख से पौधा पैदा करनेकी विधा जानते थे। पत्थर पर दूब जमाने की हिकमत इन्हीं लोगों को मालूम थी।' : 'इमरतिया' : नागार्जुन : पृ० १९७।

2\. "The novel is the form of literature which most fully
२ reflects this individualist and innovating reorientation."
The Rise of the Novel: Ian Watt (1957) P:13.

३ डॉ० नगेन्द्र : कामायनी के अध्ययन की समस्याएं : पृ० १५-२३।

स्वाभाविकता का संचार कर उसकी खूबसूरती को बढ़ाते हैं, वहाँ महाकाव्य में अनुचित ही नहीं वर्ज्य माने जायेंगे । देहाती लोग बात बात में कहावत ठोक देते हैं, अत: जब ग्रामीण परिवेश होता है तब उपन्यास में ऐसी अनेक कहावतें अपने आपरचना-धर्मिता के कारण जुड़ जाती हैं हैं । मुंशी प्रेमचन्द के उपन्यासों में मुहावरे व कहावतों का प्रयोग बहुतायत से हुआ है । उपन्यास की यथार्थ-धर्मिता के कारण उसका भाषिक-रचाव, वाक्य-गठन आदि भी महाकाव्य से दूसरे छोर पर जा बैठता है । नीचे कुछ उदाहरण[१] दिए जा रहे हैं जिससे महाकाव्य से उसकी भिन्नता स्वत: ही उभर आती है ।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि उपन्यास और महाकाव्य दोनों भिन्न रचना-धर्म, भिन्न परिस्थिति एवं भिन्न रूप-बन्ध पर आधारित काव्य-विधाएं हैं । केवल एक बात विश्वासपूर्वक कही जा सकती है आज उपन्यासनेमहाकाव्य को स्थानापन्न करनेकी सामाथ्र्य प्राप्त कर लिया है । आधुनिक काल में ऐसी कोई भी महाकाव्यात्मक रचना उपलब्ध नहीं होती जिस में आधुनिक चेतना के सभी आयाम प्रतिबिम्बित हुए हों, जबकि दूसरी ओर संसार के सभी महान साहित्य-कारों ने ऐसे उपन्यासों की सृष्टि की है जिन में हमारा आज अपनी समूची समग्रता के साथ, उसकी अच्छाइयाँ-बुराइयाँ समेत, उभर कर आया है ।

---

१ (क) " गौरी तो थी ही छिनाल । वह साल-साल में दो-तीन मर्द बदलती थी । वह उन मर्दों का बुरी तरह से पीछा करती थी जो डील-डौल से तगड़े होते थे । एक बार मठ का बड़ा घोड़ा गमाया, वह बेचैनी में हिनहिना रहा था ..... घोड़े को उस बेताबी में देखा तो गौरी मुझसे बोली --- मैं इसको ठंडा कर सकती हूँ । " : नागार्जुन : ' इमरतिया ' : पृ० २७ ।

(ख) " सूरजा तुरन्त दरी पर लेट गई । उसने लहंगा ऊपर उठा लिया और मुंह फेरकर बोली, ' चढ़ जाओ । ' " : मणि मधुकर : सफेद मेमने ' : पृ० ५५-५६ ।

(ग) " एक-दूसरे से सवा लाख की कोठी में मूंज न कुटवाऊं तो समझ लेना तुम्हारे पेशाब से पैदा नहीं हुआ है । " : श्रीलाल शुक्ल : ' राग दरबारी : पृ० १७४ ।

साहित्यिक उपन्यास की पहचान : उपन्यास इस नये युग के नये मनुष्य की नयी विधा है। उसका ~~स्वरूपअत्यन्त~~ स्वरूप अत्यन्त जटिल, अनिश्चित एवं नित्य-परिवर्तित है।[१] बिहारी कीनायिका की भांति उसकी तस्वीर खींचना भी मुश्किल है क्योंकि वह युग को पकड़ने की चेष्टा करता है और वर्तमान संदर्भ में युग तो द्रुत गति से भाग रहा है। इस द्रुतगामी काल को पकड़ने की चेष्टा में वह नित्य नवीन रूपों को अन्वेषित कर रहा है। इवान वाट के मतानुसार पूर्व-स्वीकृत रूप के ग्रहण में कई बार अ असफलता की आशंका बनी रहती है।[२] एक ओर जहां उसमें दो-तीन पीढ़ियों की कथा होती है (यथा-- 'भूले बिसरे चित्र' -- भगवतीचरण वर्मा) वहां युलीसीज् जैसे उपन्यास भी हैं जो बृहदाकार होते हुए भी एक व्यक्ति की कुल एक दिन की कथा का आलेखन करते हैं। एडवीन मूर के मतानुसार तो यह उपन्यास न होकर उपन्यास की समाप्ति तथा किसी और विधा का प्रारम्भ है।[३] उपन्यास का वस्तुगत एवं शिल्पगत वैविध्य बढ़ता जा रहा है तथा दूसरे इसकी लोकप्रियता इतनी बढ़ गई है कि उसके लेखन में बाढ़-सी आ गई है। अत: उसके लेखकों में जहां एक ओर संसार के महान मनीषी एवं प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति हैं वहां दूसरी ओर व्यावसायिक वृत्तिवाले सामान्य जन भी हैं।[४] अत: उपन्यास

---

१ "The Novel , which is the most complex and formless of all its (i.e. literature's) divisions." :The structure of the Novel: Edwin Muir (1963) : P. 89.

२ "Since the novelist's primary task is to convey the impression of fidelity of human expereience, attention to any pre-established formal conventions can only endanger his successs." The Rise of the Novel : Ian Watt (1957) P:13

३ " It is not a novel at all, but the end of the novel and the beginning of some thing else." :The structure of the Novel: Edwin Muir (=1963) : P 126.

४ "Though the novel is a great art, it is also an art which admits of much mediocre talent." :A short History of English Literuture: Ifor Evans (1970) :P.207.

के सम्बन्ध में अच्छे-बुरे का विवेक करना आवश्यक हो जाता है। वैसे किसी भी वस्तु की अच्छाई या बुराई दृष्टि सापेक्ष है, तथपि बाज़ारू या घासलेटी प्रकार के उपन्यासों को सहज ही अलगाया जा सकता है।

(१) यथार्थ की पहचान : उपन्यास का रूपबन्ध चाहे कैसा भी हो उसमें रचनाकार की यथार्थधर्मिता निहित रहती है। आदर्शवादी उपन्यासकार भी यथार्थ की अवहेलना नहीं कर सकता। उसका आदर्श यथार्थ की भूमि पर ही फलता-फूलता है। डा० देवीशंकर अवस्थी द्वारा सम्पादित 'विवेक के रंग' नामक ग्रन्थ में उपन्यास विभाग को 'यथार्थ की पहचान' नामक शीर्षक के अन्तर्गत रखा गया है जो इस तथ्य की ओर संकेत करता है।[1] गुजराती के लब्धप्रतिष्ठित समालोचक प्रो० यशवन्त शुक्ल भी उपन्यासकार के अनुभव की ईमानदारी पर बल देते हैं।[2] उपन्यास में सम्भाव्यता का गुण होना अनिवार्य है और यह गुण यथार्थ की सही पकड़ से ही आता है। उत्कृष्ट उपन्या उपन्यासों को पढ़ते समय हम जीवन से पलायन नहीं करते, बल्कि जीवन को और भी भलीभांति और गहराई से समझते हैं। कई बार जीवन में जिन तन्तुओं को नहीं छेड़ा जाता, महान साहित्य उन तन्तुओं को छेड़ता है। उनके अध्ययन से हमारे अनुभव का दायरा बढ़ता ही रहता है।

यथार्थ की पहचान से तात्पर्य मानव-जीवन या व्यक्ति-जीवन के समुचित आकलन से है। अखबारी कतरनों को बटोरकर लिखे जाने वाले उपन्यासों को यथार्थतः उपन्यास की संज्ञा नहीं मिलनी चाहिए। उदाहरणार्थ इन उपन्यासों

---

१ 'विवेक के रंग' : सं० डॉ० देवीशंकर अवस्थी : हेविए : पृ. २८१ ।

२ "नवलकथाकारमां 'अनुभवनी साचकलाई' होय तो बस। पोतानुं केन्द्र चूक्या विना अनुभवनुं आलेखन करवुं एज नवलकथा के बीजा कोई पण साहित्य स्वरूपना विकासनो धोरी मार्ग छे।" :उद्धृतकर्ता : डा० सुरेश जोशी : 'कथोपकथन' :पृ० ५-६ ।

में जिन घटनाओं का चित्रण उपलब्ध होता है, वे घटनाएं समाज में घटती हैं (घटी हैं, अखबारों में चर्चा भी हुई है) परन्तु वे सब घटनाएं किसी एक-दो पात्रों के जीवन में नहीं घट सकती । इस बात को हम एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करेंगे । एक लड़की है जिसके माँ-बाप शैशवकाल में ही मर गये हैं । लड़की मामा-मामी के यहाँ बड़े लाड़-प्यार से पलती है । मामा-मामी उसे कालेज तक पढ़ाते हैं । उसका एक लड़के से प्रेम होता है । मामा-मामी कहीं और उसका विवाह तय करते हैं । लड़की विरोध नहीं करती, परन्तु ऐन बारात वाले दिन भाग जाती है । प्रेमी के घर पहुंचती है । ठीक उसी दिन उसे पता चलता है कि उसका प्रेमी ~~को~~ तो महान ` लोफर ` है । लड़कियों से इश्क जताना उसका पेशा है । वह पुनः लौट आती है, परन्तु तब तक बारात वापिस जा चुकी है और मामा-मामी ने आत्महत्या कर ली है । लड़की भागकर स्टेशन पहुंचती है, जहां उसे उसकी एक सहेली मिलती है । सहेली पहली बार ससुराल जा रही है । उसका पति शायद ~~नहीं~~ नहीं रहा है । ससुरालवालों ने अपनी बहू को देखा तक नहीं है । सहेली को एक बच्चा भी है । ट्रेन को अकस्मात होता है । सहेली अपनी अंतिम घड़ियों में बच्चेका हवाला उसे दे देती है । अतः वह उसके ~~सुसु~~ससुराल जाती है । वहां वह उस व्यक्ति को देखती है जिससे उसकी शादी होनेवाली थी । आदि आदि ।[१]

उपर्युक्त कथा में वर्णित सभी घटनाएं समाज में घट सकती हैं , पर ये सारी घटनाएं किसी एक व्यक्ति के जीवन में नहीं घट सकती । अतः सभी स सम्भावित घटनाओं के बावजूद उपन्यास घोर अयथार्थवादी है । बल्कि उसे उपन्यास कहना उपन्यास और साहित्य का घोर अपमान है ।

(२) <u>यात्रा -- स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर</u> : अच्छे उपन्यासों में कथा-वस्तु, चरित्र-चित्रण, वातावरण, कथोपकथन, उद्देश्य आदि तत्वों का सूक्ष्म गुम्फन होता है । सतही और घासलेटी उपन्यास सिर्फ स्थूल कथा के सहारे खड़े होते हैं । उनसे कथा की यह बैसाखी यदि छीन ली जाय तो वे खड़े नहीं रह सकते । ~~ऊपर वर्णित कथा को वर्तमान ` मूवी पब्लिक ` ही सराह सकती है~~ । और उसकी कथा भी ~~स~~स्थूल कथा ही होती है, जिसे ई०एम० फार्स्टर ` स्टोरी ` कहते हैं । स्टोरी और प्लाट

---

१. देखिए : गुलशन नन्दा कृत उपन्यास - `कटी पतंग' ।

में काफी अन्तर होता है। स्टोरी 'फिर क्या हुआ' वाली जिज्ञासा को तृप्त करती है जबकि प्लोट में 'क्या हुआ' के स्थान पर 'कैसे हुआ' रहता है जो निश्चय ही अधिक बुद्धिमता व प्रज्ञा की अपेक्षा रखता है।[१] ऊपर वर्णित कथा को वर्तमान 'मूवी पब्लिक' ही सराह सकती है। जबकि उत्कृष्ट उपन्यासों में कथा स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर संक्रमित होती है। यही बात चरित्रांकन पर भी लागू होती है। अच्छे साहित्यिक स्तर के उपन्यासों में पात्रों का बड़ा ही सूक्ष्म व मनोवैज्ञानिक आकलन किया जाता है। वे महज कठपुतली न रहकर प्राण-वन्त जीवित व्यक्ति की छवि को उभारते हैं। पात्र जिस परिवेश में सांस लेते हैं उसे चित्रित करने के लिए उपन्यासकार खूब जेहमत उठाता है। 'मादाम बोवरी' के रचयिता फ्लाबेयर अपने उपन्यास के एक सामान्य प्राकृतिक दृश्य के लिए अंकन के लिए भी कई बार घण्टों तक प्रकृति में डूबे रहते थे।[२] इसी प्रकार कथोपकथन और उद्देश्य में भी सूक्ष्मता के दर्शन होते हैं। कथोपकथन की सूक्ष्मता का अर्थ यह हुआ कि उपन्यास में कथोपकथन के रूप में आया हुआ प्रत्येक वाक्य प्रत्येक शब्द सार्थक होना चाहिए। अनावश्यक व फालतू बातें उपन्यास की कला को व्याघात पहुंचाती है। उद्देश्य की सूक्ष्मता से तात्पर्य उसकी व्यंजकता है।

---

१ "Consider the death of the queen. If it is in story we say 'and then?' If it is in a plot we ask 'why?' that is the fundamental difference between these two aspects of the novel. A plot cannot be told to a gaping audience of cave man or to a tyrannical sultan or to their modern descendant the movie-public. xx They can only supply curiosity. But a plot demands intelligence and memory also"

२ "Do you know how i passed a whole afternoon the day before Yesterday? In looking at the country-side through coloured glasses. I needed it for a page of my "Bovary" :Quoted from 'A Treatise on the Novel' : Robert Liddell.

(३) साधान्त जीवन-दृष्टि : प्रत्येक साहित्यिक स्तर का उपन्यास एक विशिष्ट जीवन-दृष्टि लिए हुए रहता है। यह बात उन्हें सामान्य और सतही कोटि के उपन्यासों से अलग करती है। उसके प्रत्येक प्रकरण, प्रत्येक पृष्ठ, प्रत्येक वाक्य से इस जीवन-दृष्टि की गूंज-अनुगूंज सुनाई पड़ती है। [१] उसके अध्ययन से लगता है कि उसका सृष्टा कोई रीढ़हीन बिना पैंदे का लोटा नहीं, बल्कि एक दृढ़ मनोबल वाला व्यक्ति है जो अपने मत पर चट्टान की तरह अटल है। प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, अज्ञेय, रेणु आदि उपन्यासकारों का अपना एक जीवन-दर्शन है, जो उन्होंने व्यक्तिगत संघर्ष व साधना के द्वारा प्राप्त किया है और यह जीवन-दर्शन उनकी कृतियों को निमज्जित करता है जिससे वे सर्वदेशीय व सर्वकालीन बन सकती हैं। घासलेटी उपन्यासकारों का अपना कोई मत या दर्शन नहीं होता।

(४) नित्य नवीनता : ऐसे उपन्यास अपने 'नावेल' नाम को सार्थक करते हैं। उनमें सदैव एक ताजगी रहती है। प्रत्येक वाचन पर उनके नये-नये अर्थ खुलते जाते हैं। उपन्यास के इस गुण को ई०एम० फास्टर 'इटर्नल वर्जिनिटि' कहते हैं। ऐसे उपन्यास एक बार पढ़नेकी वस्तु नहीं अनेक बार पढ़नेकी वस्तु है। जितनी ही बार पढ़ते हैं उसकी रचना-सृष्टि में उतने ही ज्यादा डूबते हैं जाते हैं।

(५) व्यापक चेतना : उत्कृष्ट साहित्यिक कोटि के उपन्यासों की एक और विशेषता उनकी चेतनागत व्यापकता ---- मेनी फोल्डनेस' -- में है। यह व्यापकता जीवन-स्तरों की हो सकती है और साथ ही कलागत स्तरों की भी। ऐसी कृतियां एक ही साथ विभिन्न पाठकों को अलग-अलग प्रकार से प्रभावित करती है। अज्ञेयजी के शब्दों में इसमें उपन्यासकार 'एक साथ ही कलाभिव्यंजना के कई स्तरों पर विचरण कर

---

१ "From all its chaptors, from all its pages, from all its sentences, the well written novel echoes and re-echoes its one creatige and controlling thought."

:Memories and portraits: Stea vensons: P.284.

सकता है । वह एक साथ ही सबके लिए लिख सकता है : जन -साधारण के लिए (अमुक घटित हुआ या हो रहा है), दूसरे लेखकों के लिए (अमुक विषय-वस्तु को मैंने तो ऐसे लिया है, आप क्या करते, या शेक्सपीअर या तुर्गनेव क्या करता ?) या स्वयं के लिए (हां, यह तो दृष्टिकोण हुआ, समस्या का हल क्या है ?) । एक साथ कई स्तरों पर अभिव्यक्ति आधुनिक उपन्यास का एक लक्षण है । आन्द्रे जीद का जालसाज़ (ले फा मानेर्स) इस प्रकार के उपन्यास का बहुत रोचक उदाहरण है । रूप-विधान की दृष्टि से यह इधर की महत्वपूर्ण साहित्यिक कृतियों में स्थान रखता है ।[१]

अत: समग्रावलोकन के द्वारा यह निष्कर्ष निकलता है कि उपन्यास तो बहुत बड़ी संख्या में लिखे गये और लिखे जा रहे हैं : परन्तु मील के स्तम्भ तो केवल वे ही बनेंगे जिनमें उपर्युक्त गुणों की क्षमता है । बाकी कुकुरमुत्तों की कोई कमी नहीं होती और उनका कोई स्थायित्व भी नहीं होता ।

उपन्यास की प्रमुख प्रवृत्तियां : उपन्यास में उसके रचयिता की दृष्टि का महत्व असंदिग्ध है । जिस प्रकार पदार्थ चित्र में नाना कोणों से विभिन्न आकृतियां उभरती हैं : उसी प्रकार एक ही घटना या भावस्थिति का आकलन दृष्टि की भिन्नता के कारण विभिन्न ढंगों से हो सकता है । वस्तु को देखने का सबका नज़रिया एक-सा नहीं नहीं होता । कोई उसकी खूबियों को देखता है, तो कोई कमियों को । कोई उसे उसी रूप में देखता है, जिस रूप में है: तो कोई उसे ` अमुक होना चाहिए ` वाली दृष्टि से भी देखता है । नज़रिये की इस विभिन्नता के कारण उपन्यास में कुछ प्रवृत्तियां लक्षित होती हैं । आदर्शवाद, यथार्थवाद, प्रकृतिवाद, अस्तित्ववाद प्रभृति ऐसी ही प्रवृत्तियां हैं । यहां हम इन पर संक्षेप में विचार करेंगे ।

---

१ अज्ञेय : ` हिन्दी-साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य ` : पृ० ८६ ।

(अ) आदर्शवाद : आदर्शवाद हिन्दी में 'आइडिअलिज़्म' के पर्यायरूप में प्रयुक्त किया जाता है। किन्तु वास्त वास्तव में 'आइडिअलिज़्म' का अर्थ आदर्शवाद मात्र नहीं है। यह शब्द आइडिया' (Idea)से सम्बन्धित है, जिसका मूल अर्थ है विचार। इस कारण आदर्शवाद किसी सीमा तक विचारवाद भी है।[1] आदर्शवादी दृष्टि 'जो होना चाहिए' की ओर अधिक अभिमुख होती है, क्योंकि वह इस दृश्यमान जगत को ही सबकुछ नहीं मान बैठती। 'सितारों के आगे जहां और भी है' में उसका विश्वास होता है।[2]

आदर्शवादी चिन्तकों में काण्ट (१७२४-१८०४ ई०), हिगेल (१७७०-१८३१ ई०), जार्ज बर्कले, ग्रीन (१८३६-१८८२ ई०), बर्नार्ड बोसांके (१८४८-१९३२ ई०), ब्रेडले (१८४६-१९२४ ई०) तथा आदर्शवादी कृती साहित्यकारों में वाल्मीकि, शेक्सपियर, दान्ते, गेटे, टाल्सटाय,[3] प्रेमचन्द, जैनेन्द्र प्रभृति को परिगणित कर सकते हैं। 'आदर्शवादी साहित्यकार का विश्वास है कि मनुष्य जब तक आन्तरिक सुख प्राप्त नहीं करता, उसे वास्तविक आनन्द की उपलब्धि नहीं हो सकती। मानव की चेतना जब तक भटकती रहेगी, जब तक वह शाश्वत चिरन्तन सत्य अथवा आनन्द नहीं प्राप्त कर लेता। इस प्रकार आदर्शवाद मानव-जीवन की आन्तरिक व्याख्या करता है।[4]'

परन्तु उपन्यास की रचना-धर्मिता यथार्थमूलक है। अत: उपन्यास में आदर्शवाद यथार्थ की भूमि पर ही आधृत होता है, परन्तु उसे जहां-तहां आदर्शवादी स्पर्श दिया जाता है। जैसे कुम्भकार मिट्टी को गूंदकर, उसका पिण्ड बनाकर उसे चाक पर चढ़ाता है और मनचाहे आकार-प्रकार के बरतन बनाता है : उसी प्रकार उपन्यास के क्षेत्र में यथार्थवादी मिट्टी का पिण्ड बनाकर उसे आदर्शवादी रूप दिया जाता है। उपन्यासों में आलेखित आदर्शवाद भी दो स्तरों

---

१ 'हिन्दी साहित्यकोश, भाग-१' : पृ० १०३।

२ 'यह दुनिया एक है। अनेकों --- ऐसी-ऐसी असंख्य दुनियाओं में से एक है। मैं उस पर एक नगण्य बिन्दु हूँ -- फिर अहंकार कैसा ?' : परख : पृ० १० पर सत्यधन का कथन। ३. 'हिन्दी साहित्य कोश, भाग-१ : पृ १०३-१०४

४. वही: पृ. १०३।

पर मिलता है। एक में पलायनवादी दृष्टिकोण है। जिसमें लिजलिजी भावुकता होती है और जो प्राय: किशोर-किशोरियों को अधिक आकृष्ट करती है। गुलशन नन्दा, कुशवाहा कान्त, दत्त भारती आदि में यह प्रवृत्ति लक्षित होती है। इनके उपन्यासों में निरूपित आदर्श खोखला होता है। यह आदर्श हमें कर्मक्षेत्र की ओर प्रेरित नहीं करता, वरन् यह सोचने पर मजबूर करता है कि 'ऐसा तो उपन्यासों में ही सम्भव है, जीवन में नहीं।' इसका कोई गहरा प्रभाव नहीं होता जबकि दूसरा आदर्श यथार्थ की भूमि पर आधारित होता है जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है। यथार्थ से पस्त होकर स्वीकारा हुआ नहीं, कला की हिमानी गोद-सा नहीं, परन्तु यथार्थ से जूझते हुए पकड़ा हुआ आदर्श है। प्रेमचन्द और जैनेन्द्र का आदर्श उसी प्रकार का है। वैसे प्रेमचन्द अपने उत्तर काल में क्रमश: यथार्थ की ओर बढ़ रहे थे जैसा कि हम आगे देखेंगे। प्राय: देखा जाता है कि अभावों से जूझते हुए युवक-साहित्यकार आरम्भ में आदर्शवादी ही होते हैं क्योंकि मनोविज्ञान के अनुसार वे अपने अभावों की पूर्ति अपने इसी मनोगत जगत में करते हैं। जीवन के अभावों को उपन्यासों के द्वारा पूरा किया जा सकता है, तथापि उसके मूल में यथार्थ ही रहता है। यथार्थ के अभाव में वे लिजलिजी भावुकता से युक्त पलायनवादी बन जाते हैं: और ऐसा पलायनवाद निश्चय ही जीवन के लिए स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। आदर्शवाद का अतिरेक रचना की विश्वसनीयता का दम तोड़ देता है तो एकांगी दृष्टि से चित्रित नग्न यथार्थवाद निराशा एवं कुण्ठाओं को जन्म देता है। स्वयं प्रेमचन्दजी के अनुसार जहां आदर्शवाद हमें एक मनोरम जगत में पहुंचाता है, वहां यथार्थवाद हमारी आंखें खोल देता है। अत: वे ही उपन्यास उत्कृष्ट माने जायेंगे जिसमें इन दोनों का मिला-जुला रूप होगा। इसे ही वे आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद कहते हैं।[१] वैसे आदर्श भी केवल आकाश-कुसुमवत् नहीं होता। वह भी कहीं न कहीं यथार्थ-भूमि को स्पर्श करता ही है। जिसके अस्तित्व की सम्भावना की जा सकती है, आदर्श भी उसी पर आधारित रहता है। शायद इसलिए डॉ० रामदरश मिश्र ने जैनेन्द्र को सम्भावनाओं का कलाकार कहा है।[२] जैनेन्द्र की औपन्यासिक सृष्टि के पात्र भले ही आम तौर

---

१ द्रष्टव्य : 'कुछ विचार' : प्रेमचन्द : पृ० ३५-५१२ [illegible]।

२ 'आज का हिन्दी साहित्य : सम्वेदना और दृष्टि' : पृ० १४५।

पर न मिलते हों पर ऐसे पात्र संसार में हो ही नहीं सकते ऐसा भी नहीं कहा जा सकता । यह संसार अनेक विचित्रताओं से भरा हुआ है ।

(आ) यथार्थवाद : पूर्ववर्ती विवेचन में संकेत दिया जा चुका है कि वस्तुत: उपन्यास की रचना-धर्मिता यथार्थमूलक है । यथार्थवाद "साहित्य की एक विशिष्ट चिन्तन-पद्धति है, जिसके अनुसार कलाकार को अपनी कृति में जीवन के यथार्थ रूप का अंकन करना चाहिए । यह दृष्टिकोण वस्तुत: आदर्शवाद का विरोधी माना जाता है । पर वस्तुत: जो तो आदर्श उतना ही यथार्थ है, जितनी ~~किकने~~ कि कोई यथार्थवादी परिस्थिति । जीवन में अयथार्थ की कल्पना दुष्कर है । किन्तु अपने पारिभाषिक अर्थ में यथार्थवाद जीवन की समग्र परिस्थितियों के प्रति ईमानदारी का दावा करते हुए भी प्राय: मनुष्य की हीनताओं तथा कुरूपताओं का चित्रण करता ~~है~~है । यथार्थवादी कलाकार जीवन के सुन्दर अंश को छोड़कर असुन्दर अंश का अंकन करना चाहता है । यह एक प्रकार से उसका पूर्वाग्रह है ।"[1] परन्तु डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी का यह मत यथार्थवाद के सम्बन्ध में फैली हुई भ्रान्त धारणा का प्रतिपादन है जो कुछ पश्चिमी विद्वानों ने फैलायी है ।[2] वस्तुत: यथार्थवाद जीवन के दोनों पक्ष -- 'सु' और 'कु' -- को समन्वित करते हुए चलता है । 'कु' का आधिक्य हो सकता है पर 'सु' के अस्तित्व को ही नकारना मानवता में अविश्वास करना है और सच्चा यथार्थवादी कलाकार सर्वप्रथम मानवतावादी होता है । इसी विशेषता के कारण प्रेमचन्दजी हिन्दी उपन्यास साहित्य में ध्रुव-स्थान बनाये हुए हैं । गोदान पूर्णतया यथार्थवादी रचना है, और यद्यपि वह भारतीय कृषक-जीवन की ट्रैजेडी है, तथापि होरी-धनिया के दाम्पत्य में रस की स्रोतस्विनी सदैव बहती रही है । रायसाहब के शोषक रूप के साथ उनका मानवतावादी रूप भी उभर आया है । जमींदार या पूंजीपति भी आखिर तो इन्सान ही होता है । उसके किसी कोने में तो मानवता

१- 'हिन्दी साहित्यकोश', भाग-१ : पृ० ६६०-६६१ ।

२ द्रष्टव्य : डॉ० शिवकुमार मिश्र : 'यथार्थवाद' : पृ० १४ ।

मानवता का दीया जगमगाता होगा । महान साहित्य इतना एकांगी नहीं हो सकता कि उसे इस दीये का प्रकाश न दिखायी पड़े । इस सम्बन्ध में अज्ञेयजी का यह मत उचित ही कहा जा सकता है : " सामन्तकालीन साहित्य में अगर उच्च वर्ग के पात्रों का ही यथार्थ वर्णन होता था और इधर लोग केवल एक परिपाटी के सांचे में ढली हुई छायाएं मात्र रह जाती थीं, तो आजकी आग्रही साहित्य-दृष्टि भी कम संकुचित नहीं है अगर उसने घुलुआ धोबी और मनुआ चमार को व्यक्ति-चरित्र देकर मध्य और उच्च वर्गीय व्यक्तियों को पुतले बना दिया है ।"[1]

सच्चा यथार्थवाद तो वह है कि जिसमें जीवन को समग्रता से ग्रहण किया जाय --- उसकी सारी अच्छाइयाँ बुराइयों के साथ । कम से कम साहित्य में तो खण्डित दृष्टि असंदिग्ध रूप से अस्वस्थ मानी जानी चाहिए । यह सच है कि 'राग दरबारी' का 'शिवपालगंज' अपने 'हरामीपन' में पक गया है, तथापि यह कतई असम्भव है कि मानवता की एक भी लहर वहां न मिले । पूरे उपन्यास में लेखक का दृष्टिकोण मखौल उड़ानेका ही रहा है । एक भी ऐसा दृश्य नहीं जहां मानवता का दीया टिमटिमाता हो । रामदरश मिश्र के 'सूखता हुआ तालाब' में भी गांव की इसी गंदकी को गहराया गया है तथापि वहां 'देवप्रकाश' के रूप में मानवीय सम्वेदना का मार्मिक संस्पर्श भी है ।

जीवन का सच्चा, अनावृत एवं समग्र चित्र अंकित करना यथार्थवाद का धर्म है । प्रेमचन्द का मत है कि ऐसा करने से पाठक ऊब जायेगा, जो जीवन में है उसे उपन्यास में पाकर उसे निराशा ही होगी ।[2] किन्तु ऐसा समझना बेमानी है क्योंकि जो जीवन में है वही उपन्यास में आवे यह तो इस विधा का तकाज़ा है और यदि यथार्थ का निरूपण समग्रता को लेकर मानवीय सम्वेदना के साथ हो तो ऊब पैदा हो ही नहीं सकती । क्या त्रासदी नाटक आनन्द की सृष्टि नहीं करते ? वस्तुत: यथार्थवाद में उसका एकांगी दृष्टिकोण ही सब से बड़ा भयस्थान है । यदि उसका निवारण किया जाय तो औपन्यासिक कला को यथार्थवाद से शतश: लाभ हो सकता है ।

१. अज्ञेय : 'हिन्दी-साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य' : पृ. ८८ । २. प्रेमचन्द : 'कुछ विचार' : पृ. 'उपन्यास' शीर्षक लेख से)

वस्तुत: यथार्थवाद हिन्दी साहित्य के लिए नया नहीं है। वह सुधारक साहित्य का प्रथम अस्त्र है। किसी भी सामाजिक स्थिति के प्रति विद्रोह करते समय साहित्यकार उसका यथार्थवादी चित्र उपस्थित करता है। इस प्रकार वह अपने पाठक के मन में उस आक्रोश को जन्म देना चाहता है, जिसके बिना किसी भी सुधार, परिवर्तन अथवा क्रान्ति की कल्पना नहीं की जा सकती।..... कबीर एक प्रकार से हिन्दी के प्रथम यथार्थवादी कवि हैं।[1] जिन्होंने समाज की पोल खोलने में किसी प्रकार की कमी नहीं बरती। परन्तु इसके साथ कबीर में भक्ति भी है : जैसे प्रेमचन्द में मानवीय आस्था।

यथार्थवाद तो साहित्य में सदा से रहा है : परन्तु आधुनिक काल में मार्क्स तथा फ्रायड की मनीषा ने इसे विशेषत: पोषित किया है। मार्क्स के चिन्तन को लेकर समाजवादी यथार्थवाद पनप रहा है तो फ्रायड के मनोविश्लेषण (Pseyeho-Analysis) को लेकर मानसिक या चैतसिक यथार्थ विकसित हो रहा है : जिन्हें क्रमश: प्रगतिवादी एवं प्रयोगवादी आंदोलन गति दे रहे हैं।

(इ) प्रकृतिवाद : (Naturalism) : प्रकृतिवाद वस्तुत: यथार्थवाद का ही एक रूप है। वह रूप जिसमें विज्ञान के (विशेषत: नृवंशशास्त्र) नियमों के अनुसार मानवीय प्रवृत्तियों का आख्यान किया जाता है। प्रकृतिवाद इन्सान को अच्छे या बुरे रूप में नहीं देखता। वह उसके गुण-दोषों को उसकी आदिम वृत्तियों (Fundamental instincts), आनुवंशिकता (Heredity), तथा वातावरण का परिणाम मानता है। इसे प्रकृतिवादियों का जीवन के प्रति अनालोचनात्मक दृष्टिकोण कह सकते हैं। अत: प्रकृतिवादी उपन्यासों में मनुष्य का चित्रण उसके नग्न रूप में होता है। ऐमिल ज़ोला, रोमां रोलां, मोपासां आदि फ्रेन्च औपन्यासिकों में यह प्रवृत्ति लक्षित होती है। परन्तु ऐमिल ज़ोला (१८४०-१९०२) में यह प्रवृत्ति बहुतायत से मिलती है। ऐमिल

---

१ हिन्दी साहित्यकोश, भाग-१ : पृ० ६६१।

ज़ोला ने न केवल प्रकृतिवादी उपन्यास ही लिखे, बल्कि Experimental Novel तथा Naturalist Novel जैसे सैद्धान्तिक विवेचन के ग्रन्थों में एतद्विषयक गम्भीर मीमांसा भी की । अपनी इस मीमांसा में वह मेण्डल आदि वैज्ञानिकों की Heredity सम्बन्धी खोजों का भी आधार लेता है । 'रोगन मोक्वार उपन्यास' माला में वह इन्हीं वैज्ञानिक तथ्यों को कलात्मक अभिव्यक्ति देता है ।

डॉ० श्रीकृष्णलाल ने चतुरसेन शास्त्री, उग्र, चन्द्रशेखर पाठक और इलाचन्द्र जोशी को प्रकृतिवादी मानते हुए कहा है कि इन प्रकृतिवादियों ने 'ऐसे चरित्रों की सृष्टि की जो पुकार-पुकार कर कहते हैं कि मनुष्य और पशु में कोई विशेष अन्तर नहीं है-विशेषकर विषय-भोग की दृष्टि से वे पशुओं से भी नीच और निकृष्ट हैं ।'[1]

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी इस सम्बन्ध में लिखते हैं ---' यथार्थवाद और प्रकृतिवाद के नाम पर जिस नवीनवाद या साहित्य-शैली का विकास हुआ, उसमें भी ~~जीवन के क्रमशः~~ क्रमशः जीवन के स्वस्थ उपकरणों का अभाव दिखायी पड़ने लगा । सत्य और यथार्थ के नाम पर जो रचनाएं प्रस्तुत की गईं उन में प्रायः विकृत और असन्तुलित चरित्रों की जीवन-गाथा रहा करती थी ।'[2] तो डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'प्रकृतिवाद वह वाद या चिन्तन धारा है जिसके 'अनुसार मनुष्य प्रकृति का उसी प्रकार से क्रमशः विकसित जन्तु है, जिस प्रकार संसार के अन्य प्राणी । उसमें पशु-सुलभ आकर्षण-विकर्षण ज्यों के त्यों वर्तमान हैं । प्रकृतिवादी लेखक मनुष्य को काम-क्रोध आदि मनोरागों का गट्ठर मात्र समझता है, उसके अर्थहीन आचरणों, कामासक्त चेष्टाओं और अहंकार से उत्पन्न धार्मिक वृत्तियों का विशेष भाव से उल्लेख करता है ।'[3]

परन्तु अस्वस्थ, विकृत एवं असाधारण चरित्रांकन मात्र से कोई उपन्यास प्रकृतिवादी नहीं हो जाता । प्रकृतिवादी उपन्यासकार की एक विशिष्ट चिन्तन-धारा होती है जो वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है । संक्षेप में प्रकृतिवादी उपन्यास के लक्षण

---

१. 'हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन : डॉ० गणेशन : पृ. ३७२ । २. 'नया साहित्य : नये प्रश्न' : पृ. ९ । ३. 'हिन्दी साहित्य' : पृ. ४२७-४२८ ।

निम्नलिखित हैं : (१) ाक अध्ययन एवं प्रयोगात्मक निरीक्षण, (२) जीवन के प्रति तटस्थ अनालोचनात्मक दृष्टिकोण, (३) सूक्ष्म निरीक्षणात्मक यथार्थवादी शैली जो अनुभव की सच्चाई पर आधारित होती है, (४) मनुष्य की पाशविकता के बावजूद एक मानवीय संस्पर्श।

उपर्युक्त लक्षणों के प्रकाश में हम कह सकते हैं कि डॉ० श्रीकृष्णलाल द्वारा निर्दिष्ट तीनों उपन्यासकारों को प्रकृतिवादी नहीं कहा जा सकता। इलाचन्द्र जोशी में पाश्चात्य उपन्यास साहित्य का प्रकाण्ड ज्ञान तो है पर अनुभव की वह आंच नहीं जो ज़ोला तथा रोमांरोलां आदि में मिलती है। शेष दो में प्रकृतिवादी वैज्ञानिक ज्ञान व चिन्तन का अभाव है। डॉ० शिवदानसिंह चौहान ने अपने ग्रन्थ ` साहित्यानुशीलन ` में गर्मराख ` ( उपेन्द्रनाथ अश्क ) तथा ` पथ की खोज ` (डॉ० देवराज) आदि उपन्यासों को प्रकृतिवादी बताया है। परन्तु यहां हम डॉ० गणेशन के इस मत से सहमत हैं कि " इन (उपन्यासों) को पूर्णतया प्रकृतिवादी कह भी नहीं सकते क्योंकि प्रकृतिवादी के लिए आवश्यक वैज्ञानिक अध्ययन, सूक्ष्म निरीक्षण, तटस्थ दृष्टिकोण आदि का इन में बहुत कुछ अभाव है।[१]"

इस दृष्टि से मणि मधुकर कृत ` सफेद मेमने ` का नाम उल्लेखनीय होगा। उसमें राजस्थान के बाड़मेर जिले में आयी हुई नेगिया, गाबासी, बराऊ आदि कुछ ढाणियों के जीवन का बड़ा सूक्ष्म यथार्थवादी एवं तटस्थ चित्रण हुआ है। सन्दो एवं पशु-डाक्टर भानमल की आनुवंशिकता का संकेत दिया गया है। ज़ोला की भांति वंशानुक्रम (Heredity) का पूरा विवरण नहीं मिलता परन्तु संक्षिप्त झांकी अवश्य मिल जाती है। पात्रों के अच्छे-बुरे कार्यों की आलोचना नहीं मिलती। पाशविक वृत्तियों के साथ उच्च मानवीय संस्पर्श भी प्राप्त होता है। मनुष्य के उत्थान एवं पतन को उसके स्वाभाविक क्रम में बताया गया है। सन्दो द्वारा सतायी गयी रूपवती सूरजा (जाटणी)

---

१ डॉ० गणेशन : ` हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन ` : पृ० ३६५।

घृणावश जस्सूको भी ` चढ़ जाने ` के लिए कहती है, परन्तु उसका जोरदार शब्दों में विरोध कर अपनी मानवता का परिचय देता है। वही जस्सू जब सन्दो के आगे लाचार हो जाता है और सूरजा को नहीं बचा सकता तब उसका स्वप्न भंग होता है और वह अपनी ही आँखों में गिर जाता है। तब वह एक सामान्य व्यक्ति की तरह जन्तरी जैसी एक सामान्य खानाबदोश औरत पर बलात्कार करने की असफल चेष्टा करता है। डॉ० भानमल जो अपने एक साथी को विपदा से बचाने के लिए बैंक में गबन करता है, वही परिस्थितियों में पड़कर अपनी ही पत्नी का खून भी कर देता है। एक स्थान पर उसे दवाखाने की भैंस के साथ संभोग करते हुए भी बताया गया है। इस दृश्य का चित्रण लेखकने निस्संग दृष्टि से विवेक के साथ किया है।[१]

---

१ द्रष्टव्य : " एकाएक उसके खून में चिनगारियां उछलने लगीं और कोई पुकार-पुकार के कहने लगा , ` डूबो , डूबो ` डाक्टर सात नम्बर की कोठरी में घुस गया। डाक्टर ने उसे (भैंसको) सहलाया। थुही पर थपकी दी। वह धीमे से अरड़ाकर बैठ गयी और ज़मीन पर गर्दन तानकर सुस्ताने लगी। डाक्टर की जांघों के बीच का हिस्सा कड़ा पड़ने लगा। पिंडलियों में कंपकंपी दौड़ने लगी। उसने पैंट के बटन खोले और जल्दी से भैंस के पुट्ठों को दबाकर बैठ गया। ढीली पूंछ ऊपर उठा दी। गोबर की बू सांस में भर गयी। पर वह उसे बुरी नहीं लगी। एक गिलगिला आवरण चारों तरफ से उतर आया और वह हांफता हुआ उसमें पूरी तरह गुम होने लगा। व्यर्थ, सबकुछ व्यर्थ। सच सिर्फ यही एक क्षण है। उसने रगों के तनाव को ताप को अन्दर डूबोते हुए सोचा। भैंस शान्त थी। उसकी उत्तेजना गिर रही थी , शायद। डाक्टर का ज्वार ठण्डा पड़ गया। वह कृतज्ञ भाव से भैंस की पीठ थपथपा कर उठा, पैंट के बटन बन्द करता हुआ अपनी कोठरी की तरफ चल पड़ा। कोठरी के सामने एक आदमी खड़ा था। डाक्टर सहम गया। चुपचाप कोठरी के ताले में चाबी घुमाने लगा। "

: मणि मधुकर : ` सफेद मेमने ` : पृ० ५०-५१।

इस प्रकार पूर्वनिर्दिष्ट लक्षणों के अनुसार `सफेद मेमने` एक सीमा तक प्रकृतिवादी उपन्यास कहा जा सकता है, परन्तु किसी उपन्यास के प्रकृतिवादी होने से ही वह महान् कृति नहीं हो जाती। स्वयं ज़ोला का भी अनातोले फ्रान्स आदि द्वारा विरोध हुआ था। प्रकृतिवादी रचना जीवन की समग्रता का चित्र प्रस्तुत करे तो कोई हानि नहीं है। परन्तु इसमें एक भय यह है कि विकृत एवं पाशविक कृत्यों के अतिरेक से जीवन का केवल `कु` ही सामने आवे और `सु` अनाकलित रह जाय। इसे यदि बचा लिया जाय तो प्रकृतिवादी रचनाएं औपन्यासिक कला को निखार सकती हैं।

(ई) अस्तित्ववाद : (Existentialism) : अस्तित्व का अर्थ है होना --- to be or to exist और व्यक्ति सृष्टि की एक इकाई है। अत: अस्तित्ववाद वह वाद या चिन्तन धारा है जिसके केन्द्र में व्यक्ति और उसका अहं प्रमुख होता है। सुख में व्यक्ति का प्रसार होता है और दु:ख में आत्म-संकोच। दु:ख, वेदना और पीड़ा व्यक्ति को आत्मकेन्द्रित करता है। व्यक्ति के अन्तर्मन को मथनेवाली वेदना की प्रसव-पीड़ा उसे अन्तर्मुखी बना देती है। यह एक सहज सत्य है कि दु:ख व्यक्ति को दार्शनिक बना देता है। शैशवकाल में ही जिन बच्चों पर आपत्ति के बादल मंडराते हैं, वे कम उम्र में ही समझदार हो जाते हैं। अस्तित्ववादी चिन्तन का प्रादुर्भाव भी मानव की चिर असहायता, करुणता एवं तज्जन्य वेदना के कारण हुआ। उसका सूत्रपात जर्मन दार्शनिक हुसरेल हेड़ेगर और डैनिश चिन्तक कीर्कगार्ड (१८१३-५५ ई) की विचार पद्धतियों में देखा जा सकता है,[1] परन्तु उसका विशेष पल्लवन तो ज्यां पाल सार्त्र (१९०५ ई०) और उसके अनुयायी (परन्तु बाद में बहुत कुछ विरोधी[2] नोबेल पुरस्कार विजेता आल्बेर कामू)(जन्म १९१३ ई०) आदि ने १९४३[3] ई० के आसपास किया। इन लेखकों ने यूरोप की विश्वसमरकालीन विभीषिकाएं अपनी आंखों से देखा था। जिन लोगों ने भारत-विभाजन

१-३ : `हिन्दी साहित्यकोश : भाग-१ :` पृ० ९४९५ ।

के समय की साम्प्रदायिक होली में मानवता को भुंजते हुए देखा है वे उसकी कल्पना-मात्र से थर-थर कांपने लगते हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिकाएं तो इससे कई गुना ऊंची, भयंकर एवं अमानुषी हैं। पश्चिमी जगत इन्हें देखकर जड हो गया था। बाद में यह जडता द्रवित हुई एक दर्शन के माध्यम से -- अस्तित्ववाद से --- सार्त्र और कामू द्वारा। युद्ध के समय की अमानुषिकता, बर्बरता और युद्धोत्तर विनाश-दर्शन ने इन चिन्तकों को भीतर तक झकझोर कर मथ डाला था। उसी मन्थन का परिणाम है यह दर्शन जो व्यक्ति के अस्तित्व को लेकर चिन्तित है। सार्त्र और कामू ने दोनों धरातलों पर -- दार्शनिक एवं साहित्यिक --- अस्तित्ववाद की मीमांसा की है। इस [१] सन्दर्भ में सार्त्र की 'व्हाट इज़ लिट्रेचर' एवं कामू की 'ल होमे रिवोल्ते' (The literary Revolt) आदि समीक्षात्मक कृतियां उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी में यह चिन्ताधारा अंग्रेजी के माध्यम से आयी है।[२] इसका सर्वाधिक प्रभाव अज्ञेय में परिलक्षित होता है क्योंकि पाश्चात्य साहित्य का गम्भीर अनुशीलन व अवगाहन जितना उन्होंने किया है आधुनिकों में बहुत कम ने किया होगा। अस्तित्ववाद का प्रभाव अज्ञेय के दो उपन्यासों में उपलब्ध होता है --- 'नदी के द्वीप' तथा 'अपने अपने अजनबी' में। इधर कुछ आलोचकों ने 'शेखर एक जीवनी' में भी अस्तित्ववाद के तत्वों का उत्खनन शुरू कर दिया है जबकि इस वाद का साहित्य में प्रचलन ही १९४३ ई० के बाद हुआ है।[३] हां 'शेखर एक जीवनी को कुछ हद तक प्रकृतिवादी अवश्य कह सकते हैं। 'पथ की खोज', 'अजय की डायरी', 'एक घिसा हुआ चेहरा', 'बैसाखियोंवाली इमारत', 'कुलटा', 'एक इन्च मुस्कान',[४] 'मित्रो मरजानी', 'सफेद मेमने' 'वे दिन', 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' 'एकोगी नहीं... राधिका' आदि उपन्यासों में इस का आंशिक आकलन उपलब्ध होता है। यहां संक्षेप में अस्तित्ववाद की प्रमुख विशेषताओं को रेखांकित किया जा रहा है:

---

१ 'हिन्दी साहित्य कोश, भाग-१': पृ० ९४९९५।

२-३-४ : द्रष्टव्य : डा० रघुवरदयाल वार्ष्णेय द्वारा लिखित लेख : 'समकालीन उपन्यास साहित्य में अस्तित्व बोध' : 'नये उपन्यास : स्वरूप और तत्व' : सं० मक्खनलाल शर्मा : पृ० ७०।

(१) मनुष्य की अवशता और तद्जन्य मृत्युबोध : बौद्ध-दर्शन एवं अस्तित्ववाद दोनों का उद्भव मनुष्य के अस्तित्व की अनिश्चितता से हुआ है । सिद्धार्थ ने प्रथम बार किसी की अर्थी देखी और वे हिल गये । उन्हें जीवन में पहली बार मृत्युबोध हुआ । मनुष्य जीवन की अनित्यता,अनिश्चितता एवं परवशता का अनुभव हुआ । उन्होंने पहली बार महसूस किया कि मनुष्य तो मृत्यु के हाथ का खिलौना है । अस्तित्ववादियों ने तो मृत्यु को और भी घिनौने रूप में देखा है । अत: वे मानते हैं कि "मानव-जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप, सबसे बड़ी चुनौती मृत्यु है । जन्म के साथ मृत्यु अनिवार्य रूप से सम्बद्ध है । मनुष्य इसके लिए कुछ नहीं कर सकता । और यहीं वह देखता है कि उसे वरण (choose)करनेकी स्वच्छन्दता नहीं है । अत: उसे अत्यन्त कम समय में अपने व्यक्तिगत जीवन को एक अर्थ देना है[१]।" अस्तित्ववाद के अनुसार जीवन की तीव्रतम अनुभूति मृत्यु के साक्षात्कार के क्षणों में होती है और वह इस मृत्यु की पूर्व-कल्पना बिना आत्महत्या के, मृत्यु से समीपस्थ होकर उसकी शीघ्र सम्भावितता तथा अनिश्चितता के बीच करता है[२]। 'अपने-अपने अजनबी' में बर्फ तले तम्बू में कैद योके और सेल्मा के द्वारा लेखक ने ऐसा मृत्यु-बोध करवाया है ।

(२) अस्तित्व-बोध : मनुष्य जीवन की अनिश्चितता एवं विवशता उसे अपनी अस्तित्व-रक्षा हेतु प्रेरित करती है । जीवन सीमित है, अनिश्चित है और उसके अस्तित्व की रक्षा के लिए उसे कोई आकार प्रदान करना है । अत: अस्तित्ववाद में प्रत्येक क्षण का महत्व है । वे क्षण को उसकी असीमता में पकड़ने की चेष्टा करते हैं । 'नदी के द्वीप' उपन्यास में प्रेयसी के क्षणिक स्पर्श की अनुभूति का वर्णन शुरू से चालीस पेज तक चलता है।

---

१ 'हिन्दी साहित्यकोश, भाग-१' : पृ० ६३ ।

२ " I auticipate death not by suicide but by living inthe presence of death always immediately possible and as undetermining everything."
:Six Existentralist Thinkers :P.9.

जैसे 'नदी के द्वीप' की कथा अत्यन्त संक्षिप्त है। भुवन और चन्द्रमाधव में से रेखा भुवन का वरण करती है परन्तु भुवन गौरा के प्रति समर्पित होता है। कुल इतनी कथा को अनुवीक्षणीय शैली से विस्तृत रूप दिया गया है। इस Expansion of moment के लिए अज्ञेयजी ने चलचित्रों की क्लोज़ अप (close up) और स्लो अप (slow up) वाली पद्धतियों का आश्रय लिया है।[1] अस्तित्ववादी लेखकों में व्यक्ति द्वारा अस्तित्व-रक्षा के संघर्ष का -- दूसरे शब्दों में मनुष्य की जिजीविषा का भी सुन्दर चित्रांकन मिलता है।[2] 'अपने-अपने अजनबी' में सेल्मा और योके मृत्यु के मुख में है : अत: इस संघर्ष को झेलने के लिए स्वप्निल अतीत में खो जाती हैं। यों वे एक-दूसरे को घृणा करती हैं परन्तु संकट के क्षणों में मानवीय प्रेम से बंध जाती है। व्यक्ति अपनी रक्षा के लिए सबकुछ कर गुजरता है। इसका एक बढ़िया उदाहरण महाभारत में प्राप्त होता है। कुरुक्षेत्र के मैदान पर अपने लाड़ले पुत्रों को धराशायी देख गान्धारी शोकविह्वल हो उठती है। तभी कृष्ण की माया से उसकी क्षुधाग्नि भड़क उठती है। उसे दूर एक बेर का वृक्ष दिखायी पड़ता है। भूख से उसके प्राण निकल रहे थे हैं। वह छटपटा रही है। बेर ऊंचाई पर है। आखिर अपने ही पुत्रों के शवों का ढेर बनाकर वह बेर को तोड़नेकी चेष्टा करती है। अस्तित्व-रक्षा का ऐसा उदाहरण और कहां मिलेगा ? स्वयं के अस्तित्व के आगे सबकुछ नगण्य हो जाता है।

(३) अहं की केन्द्रीयता : अस्तित्ववादी दर्शन व्यक्तिवाद पर आधारित है। अत: व्यक्ति के अहं को ही केन्द्र में रखा जाता है। अपने व्यक्तित्व में बाधक सभी तत्वों का उसमें विरोध पाया जाता है। यहां तक कि प्रेम की सत्ता को भी वे नकारते हैं।

१. डॉ० सत्यपाल चुघ : 'प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि' : पृ० २२३।

२ दृष्टव्य : "अक्सर मुझे लगता है कि रेवड की तमाम भेड़ों को पीछे छोड़कर अचानक कुछ सफेद मेमने आगे निकल आये हैं। वे अपने मामूली दम-खम के बूते पर भाग रहे हैं, लड़खड़ाकर गिर रहे हैं, लहूलुहान हो रहे हैं, फिर उठकर हांफ रहे हैं और उसी तरह दौड़ रहे हैं। एक डर उनके भीतर है, एक डर उनके बाहर है। एक अनदेखे कसाई का अदृश्य छुरा उनका पीछा कर

(कृपया देखिए पृ. ७९)

क्योंकि प्रेम की अवस्था में प्रेमी अपनी व्यक्ति-निष्ठा की रक्षा नहीं कर सकता। प्रेम करने वाला जाने-अनजाने अपने प्रेमी की इच्छा का गुलाम बन ही जाता है। इकबाल का एक शेर है --

` इकबाल तेरे इश्क ने सब बल दूर कर दिये :
बड़ी मुद्दत से आरज़ू थी, सीधा करे कोई।'

और अस्तित्ववादी का अहं भला यह कैसे स्वीकार कर सकता है कि कोई उसे सीधा करे। वे व्यक्ति- स्वतन्त्रता के घोर हिमायती हैं।

(४) निरीश्वरवादिता एवं धर्म-निरपेक्षता : अस्तित्ववादी चिन्तक घोर यन्त्रणाओं से गुजरे हैं। उन्होंने मृत्यु का नंगा नाच देखा है। अतः ईश्वर से उनका विश्वास उठ जाना स्वाभाविक है। वे अपने से अलग किसी सत्ता का और इस लोक से परे किसी दूसरे लोक का अस्तित्व ही नहीं मानते। वे धर्म-निरपेक्ष व्यक्ति-

---

रहा है। वे बचना चाहते हैं, इसलिए सांस-तोड़ भागाभागी के सिवा कोई चारा नहीं है।' : मणि मधुकर : सफेद मेमने ` : पृ० १४६।

१ (क) ' गौरा, कोई किसी के जीवन का निर्देशन करे, यह मैं सदा से गलत मानता आया हूं। तुम जानती हो दिशा-निर्देश भीतर का आलोक ही कर सकता है : वही स्वाधीन नैतिक जीवन है, बाकी ~~सब~~ सब गुलामी है।' : अज्ञेय : ` नदी के द्वीप ` : पृ०   ।

(ख) ' सन्तान को पढ़ा-लिखा कर फिर अपनी इच्छा पर चलाना चाहने का मतलब है स्वयं अपनी ही ही दी हुई शिक्षा-दीक्षा को अमान्य करना, अपने आप को अमान्य करना : क्योंकि बीस बरस में मां-बाप सन्तान को स्वतन्त्र विचार करना भी न सिखा सके तो उन्होंने क्या सिखाया ?' : अज्ञेय : ` नदी के द्वीप ` : पृ०   ।

स्वातन्त्र्य के इच्छुक हैं तथा इसमें बाधक होनेवाली समस्त परम्पराओं को नकारना चाहते हैं। परम्परा के प्रति विद्रोह व्यक्तिवाद का मूल उत्स है। वे सत्य को भी देशकाल-सापेक्ष मानते हैं।[1] सत्य न तो उसमें निहित रहता है जिसे जान लिया गया है और न उसमें जो अन्तत: जाने योग्य है अपितु उसमें निहित रहता है जो सामने प्रस्तुत रहता है। ~~स्वरूप~~- सत्य सापेक्ष और बदलने वाला है। अत: अपनी निरीश्वरवादिता में यह दर्शन जहाँ बौद्ध-दर्शन के निकट पड़ता है वहाँ अपनी व्यक्तिनिष्ठ भौतिकता में चार्वाक मत के समीपस्थ हो जाता है।

उपर्युक्त चिन्तन-धारा के कारण अस्तित्ववादी उपन्यासों में का शिल्प भी कुछ भिन्नता लिए हुए रहता है। अस्तित्ववादी साहित्य के कथ्य का सम्बन्ध मानव-बुद्धि एवं मानव-मन से है। अत: मनोविश्लेषणवादी शैली इसके अधिक अनुकूल रहती है। व्यक्ति-चरित्र का समुचित आकलन ऐतिहासिक या वर्णनात्मक शैली में सम्भव नहीं। ~~पत्र~~पत्र, आत्मसम्भाषण, चिन्तन, कविता, उद्धरण आदि के द्वारा व्यक्ति-चरित्र समुचित रूप से उभरता है। अत: ऐसे उपन्यासों में इन पद्धतियों का भरसक उपयोग होता है। अज्ञेय के उपन्यासों में कविता -- अंग्रेजी कवियों के उद्धरणों -- का प्रयोग बहुतायत से मिलता है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि हिन्दी उपन्यास आदर्शवाद, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद, आलोचनात्मक यथार्थवाद (Critical Realism) समाजवादी यथार्थवाद (Socialistic Realism), चैतसिक या मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद; प्रकृतिवाद, अस्तित्ववाद आदि प्रवृत्तियों से गुजरता हुआ वस्तु और कला के क्षेत्र में निरन्तर गतिशील है। संक्षेप में उपन्यास के क्षेत्र में यथार्थवादी

---

१ "Truth does not lie in something already known, or Something finally knowable or in an abso'ute but rather in what arises and comes to pass ~~.~~ Here there is only a ralative and charging truth for empirical existonce itself change." : Karl Jaspers :Reason and Existence, P-81

प्रवृत्तियां जितनी विकसित हुई हैं उतनी आदर्शवादी नहीं । अत: उपन्यास यथार्थवादी विधा है यह स्वत: सिद्ध हो जाता है ।

वस्तुत: कोई भी महान् औपन्यासिक न तो तो नितान्त आदर्शवादी होता है और न यथार्थवादीह ही । उपन्यास के अन्त में आदर्शवादी स्पर्श देने वाले प्रेमचन्दजी घटना और चरित्रों के सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण में किसी यथार्थवादी से पीछे नहीं थे । वैसे 'गोदान' और 'मंगलसूत्र' तक आते आते पूर्णतया यथार्थवादी हो चुके थे । जैनेन्द्र आदर्शवादी कलाकार हैं : परन्तु व्यक्ति-मन की अतल गहराइयों का संस्पर्श कराते समय उनकी शैली पूर्णतया मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी हो गयी है । साहित्य-जगत में आदर्शवाद और यथार्थवाद ऐसे अलग-अलग खाने नहीं होते और साहित्य इन वादों के झमेले में पड़े बिना अपने समय के सत्य एवं यथार्थ को जितना ही गहराई से अंकित करे उतना ही साहित्य के लिए स्वास्थ्यकर है । वादग्रस्त वातावरण में साहित्य की दृष्टि व्यापक न रहकर खण्डित ही हो जाती है : और खण्डित दृ दृष्टि साहित्य के विकास के प्रतिकूल है । इसका अर्थ यह कतई नहीं कि हमें अन्य शास्त्रों या दर्शनों का लाभ नहीं लेना चाहिए । पर शास्त्र और दर्शन पचकर साहित्यिक कला के रक्त में घुल-मिल जाने चाहिए अन्यथा शास्त्र और दर्शन कला को बोझिल बना देते हैं ।

oooooooooooooooX oooooooooooooo